# रास भंडार

आशीष सूर्यभान द्विवेदी

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

**BLUEROSE PUBLISHERS**
India | U.K.

Copyright © Ashish Suryabhan Dwivedi 2025

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

For permissions requests or inquiries regarding this publication, please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7139-678-3

Typesetting: Sagar

First Edition: July 2025

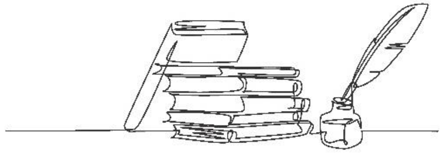

# अनुक्रमणिका


भूमिका....................1

1. कंडोम का गुब्बारा....................4
2. आधा महल....................20
3. पीपल का पेड़....................47
4. नयाभेष....................65
5. रास भण्डार....................78
6. वैलेंटाइन वीक....................97
7. लुक़मानी दवाखाना....................127
8. ब्रेकिंग न्यूज़....................149
9. इनाम....................161

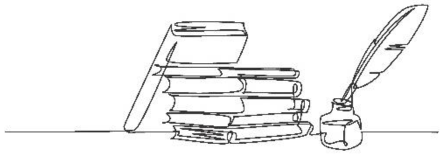

# भूमिका

इलाहाबाद की माटी में कहानियाँ वैसे नहीं फूटती है जैसे खेत की मेंड़ पर भांग उग आती है। सीधी-सादी कहानियों में यहाँ कोई ध्यान नहीं देता, बाबू!

इहाँ तो हर बात ऐसे सुनाई जाती है, जैसे रामानंद सागर खुद घुस के स्क्रिप्ट डिक्टेट कर रहे हों। कहानी में बस ज़रा सा बखेड़ा बो दो, फिर देखौ—पूरा चौराहा जाम, लोग जमा, और माहौल ऐसा बने कि ट्रैफिक हवलदार खुद चाय के कप बाँटने लगे। काहे कि इलाहाबादी चाय की एक चुस्की में पूरा वेद-पुराण निपटा देता है, और दूसरी चुस्की में रामायण-महाभारत का सार ठेल देता है। अब सोचिए, ऐसे माहौल में सीधा-सपाट किस्सा कौन पूछेगा? इहाँ तो कहानी में तब तक जान नहीं आती है, जब तक उसमें गरम मसाला, तेज़ मिर्च, अउर हल्का सा तड़का ना पड़ जाए।

कभी-कभी तो लगता है, छज्जे पर सूखती चड्डी भी कोई राज़ छुपाए बैठी है, और नल से टपकता पानी किसी पुराने अफ़साने की रट लगाये

रहता है —“यही वो जगह है जिसका नाम बरसाती मोहल्ला है जहाँ हर घर के अंदर एक उपन्यास दबा पड़ा है, और हर नुक्कड़ एक चैप्टर है।”

सोचता हूँ, चमत्कार वाकई चमत्कार होते हैं या फिर अंदर ही अंदर पक रही कोई मजबूरी की भाप होती है, जो एक दिन बाहर फट के निकल पड़ती है? जैसे घड़ा धीरे-धीरे भरता है—एक-एक बूँद गिरती है, और फिर अचानक बस एक आखिरी बूँद उसे तोड़ देती है। वैसी ही होती हैं कुछ घटनाएँ भी—धीरे-धीरे सुलगती रहती हैं, और फिर अचानक किसी नुक्कड़ पर, बगैर किसी अलार्म के, सब कुछ बदल जाता है।

इलाहाबाद का चौक उस दिन भी कुछ वैसा ही नज़ारा पेश कर रहा था—जैसे घड़े में आखिरी बूंद गिरने को हो, और वही बूंद उसे चटकाने के लिए काफी हो। भीड़ खौल रही थी, जैसे गर्म रुमाल पे पड़ा पानी, और शहर का मिजाज तो ऐसा चढ़ा था जैसे चुनावी मौसम में विधायक का बीपी।

अब देखिए, अगर कोई भोला-भाला नागरिक इस पावन धरती पे सेक्स टॉय शॉप खोलने की हिम्मत करेगा, तो उसका हश्र क्या होगा, ये तो उसी दिन लिख दिया गया था जब इलाहाबाद का नाम "प्रयागराज" कर के उसके इतिहास को प्रेस से प्रेस करवाया गया था।

"लवड़ भास्कर से 'लव यू भास्कर' बनने की कहानी तो एकदम रामचरितमानस है भैया—हर चैप्टर में नया झटका है! अब सबकुछ यहीं बता दिए तो किताब कौन खरीदेगा? रैंडम दुबे की बाल ब्रह्मचारी से लेके बाल काटे जाने तक की दास्तान, कलुवा की प्लास्टिक सर्जरी से गोरा

होके मंदिर हथियाने वाली रणनीति, और आनंद बक्सी का वकील बनने का सारा कोर्ट ड्रामा—सब कुछ मिलेगा।

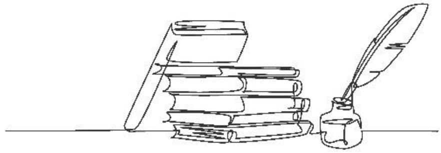

# कंडोम का गुब्बारा

मिश्री लाल गुप्ता उर्फ़ गुप्ता जी, हर सुबह अपनी नीली लूना को मालगाड़ी बना डालते। मिठाई की टोकरी, झोले, डब्बे — सब कुछ ऐसे लादते कि अगर लूना में जुबान होती, तो मुँह फुला के कहती, "गुप्ता जी, रहम करो! हम गाड़ी नहीं, दो टायर वाली मशीन हैं — बुज़ुर्ग भी और थकी हुई भी!"

लेकिन गुप्ता जी तो जैसे लूना की छाती पर राजसी ठाट से विराजते और मुट्ठीगंज की ओर निकल पड़ते — वहीं अपनी पुश्तैनी दुकान "छंगे हलवाई — सीन्स 1857" की ओर, जो इतिहास से ज़्यादा किस्सों में मशहूर थी।

पीछे से मोहल्ले के हुड़कचुल्लू टोका करते —

"अरे गुप्ता जी! अब इस 'आलम आरा' को रिटायर कर दीजिए।"

तो कोई चुटकी लेता, "कम से कम मोहल्ले के बच्चों को धक्का लगाने से तो छुटकारा मिलेगा!"

इधर ब्लॉगर भाभी गली के मोड़ पर कैमरा थामे तैयार मिलतीं —

"गुप्ता जी, एक रील बनाइए न, 'हलवाई ऑन द गो'!"

गुप्ता जी मुस्कुराते, मूँछ ऐंठते, और बिना पलटे निकल जाते।

उनका कहना था — "इतिहास बदल गया, सरकार बदल गई, पर लूना और मिठाई — ई नाहीं बदलते बाबू!"

दुकान पर कलुवा पहले से तैयार खड़ा होता—मिठाइयाँ काउंटर पर सजाने के लिए। दुकान के ऊपर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था: "छंगे हलवाई एंड संस, सीन्स 1857, मुट्ठीगंज इलाहाबाद।" यह दुकान शाही जमाने की एक पुरानी इमारत में थी। इमारत ऐसी कि देखने पर समझ ही नहीं आता कि ये आखिर थी किसकी। और तो और, इसका असली मकसद क्या था, यह भी इतिहास के धुंधलके में गुम था। अब तो इमारत महज एक खंडहर जैसी लगती थी, जिसमें बारह छोटे-छोटे दरवाजों वाली दुकानें थीं। सब एक-दूसरे की हूबहू नकल। मेहराबें कभी राजशाही का शान थीं, अब ऐसा लगता जैसे अपनी उम्र का बोझ ढोते-ढोते थक गई हों।

गुप्ता जी की दुकान इन दुकानों में सबसे पुरानी और सबसे प्रसिद्ध मानी जाती। लेटे वाले हनुमान जी में चढ़ने वाला प्रसाद वहीं से जाता। पेड़ा, लड्डू और मोटी-मोटी बूंदी। मंगलवार को हनुमान जी के श्रद्धालु छंगे हलवाई की मिठाइयों के बिना अपने भगवान को प्रसन्न ही नहीं कर सकते थे। गुप्ता जी को इस पर बड़ा गर्व था। वो इसे पुश्तैनी व्यापार नहीं, बल्कि सामाजिक सेवा मानते थे।

दुकान के भीतर, कलुवा हर मिठाई को इस तरह सजा रहा था, जैसे वह प्रसाद नहीं, स्वर्ग से उतरी कोई दिव्य देसी सौगात हो। उधर गुप्ता जी

टोकरा उतार के ऐसे दुकान में घुसे जैसे कोई रियासत का नवाब अपने तिजोरीखाने में दाखिल हो — चाल में नफ़ासत, आँखों में चिड़चिड़ापन, और कनपटी पे जरा-सी धूप।

सुबह से अबतक बस चार किलो बूंदी और 2 तसले की मिठाई ही ख़तम हुई थी। मिश्रीलाल गुप्ता का एक हाथ प्रसाद का पैकेट देता और दूसरा हाथ पैसे गिनता। बावन बरस के इस आदमी का पेट उसके धंधे की कहानी बयान करता था। लेकिन उनके चेहरे पर अभी भी वही मिठास थी जो उनकी मिठाइयों में होती थी। क़द-काठी देखकर लगता कि भगवान ने उन्हें बनाते वक़्त कंजूसी की है। मिश्रीलाल के बाल कभी काले रहे होंगे, वो तो पक्का है। लेकिन अब उनमें नमक और काली मिर्च की तरह सफ़ेदी भी घुल-मिल गई थी। ज़िन्दगी ने जिन उतार-चढ़ावों को देखा था, वो सब इन्हीं बालों में समा गए थे। और उनकी आँखें, वो तो जैसे किसी अनजानी चीज़ की तलाश में थीं। कभी किसी नए स्वाद को टटोलती थीं तो कभी अपने ग्राहकों के चेहरे पर उस मुस्कान को।

"का हो कलुआ, आज शिवरात्रि है का?"

गुप्ता ने दुकान के बाहर उमड़ी भीड़ को घूरते हुए पूछा।

"इतवार है आज!"

कलुआ ने कनपटी खुजलाते हुए बड़े फक्कड़पन से जवाब दिया,

"आदमी बिना तमाशा भीड़ लगावत है का?" गुप्ता ने धीरे से "हूँ" में सिर हिलाया, जैसे कलुआ की फिलॉसफी से बात समझ आ गई हो — और मन का झोल थोड़ा हल्का हो गया।

“लेकिन मिठाई त जस की तस रखल बा। बिक काहे नहीं रही?" – गुप्ता जी ने चश्मा सम्हालते हुए पूछा, जैसे पूरे बाज़ार की अर्थव्यवस्था का पोस्टमॉर्टम करने आए हों।

"अब का बताईं मालिक," कलुआ ने सिर खुजलाया, "जब लोग पचास-पचास ग्राम मिठाई लेके जाएंगे तो कहाँ से ख़तम होगी मिठाई। उप्पर से आज मंगल भी नहीं है।"

थोड़ी देर चुप रहकर वो फिर बोला, अबकी आवाज़ में हल्की महाज्ञानी टाइप खाँसी घुली हुई थी—

"अब देखिए न, तुम्हारे परदादा जी लेटे हुए हनुमान जी के नाम पर प्रसाद की दुकान खोल दिए, तो बाकिर भगवान लोगन के भक्त लोग इहाँ अइहैं काहे?"

गुप्ता जी चुप हो गए। जवाब देने के बजाय उन्होंने भीड़ में आँखें गड़ाईं, जैसे मिठाई नहीं, अपना आत्मसम्मान खोज रहे हों।

पीछे, लकड़ी के उस पुराने तख़्त पर कलुआ अख़बार के बासी टुकड़ों में लड्डू कुछ इस अदा से बाँध रहा था, जैसे भारत सरकार के बजट में से मिड डे मील का खर्चा छांट रहा हो—सधे हाथ, बिना ग्लानि के।

बाहर का शोर दुकान की दीवारों से टकरा रहा था—माइक पर भजन बज रहा था, कोई "हरे राम" गा रहा था और कोई "ओ भाई साहब, लाइन में लगिए" चिल्ला रहा था। भीतर, दुकान में सिर्फ सिर, कंधा, और कभी-कभार किसी का चप्पल दिखता था—जैसे इंसान नहीं, भीड़ का कोलाज हो। हर चेहरा मिठाई से ज़्यादा किसी जवाब का भूखा था।"

तभी एक तेज़, कर्कश आवाज़ गोली की तरह दुकान में घुसी—जैसे माइक के लाउडस्पीकर में बिजली का झटका लग गया हो। काउंटर पर खड़ा ग्राहक कुछ समझे बिना ही सड़क की ओर दौड़ पड़ा, जैसे उसके पैंट में आग लग गई हो। गुप्ता चीखा—"अबे रुको! पइसे दइके जाओ बे!"

बाहर सड़क पर भीड़ जमा थी, दो लड़कों को किसी अपराध की तरह घेर लिया गया था। और ठीक बीच में पप्पू था—वही पप्पू जो हाईकोर्ट से निकलते ही शहर में 'भोषड़ पप्पू' नाम से मशहूर हो गया था। उसका गला ऐसा था कि कान में गूंज़े तो तीन दिन तक भजन न सुनाई दे।

"हाँ! सालन ने नरक कर रख्खा है देश, हमार!"—कोई और चिल्लाया, जैसे भाषण की प्रतियोगिता शुरू हो गई हो। फिर कुछ दौड़ते हुए चप्पलों, जूतों और सैंडलों की आवाज़ें उठी और उड़ती धूल दुकान के अंदर। कुछ देर की ख़ामोशी के बाद लड़कों की आवाज़ें एक बार फिर से बुलंद होने लगी।

" ई ससुरे नाहीं सुधरिहैं। एक ठो मिसाल कायम करै के परी।" भीड़ से तीसरी आवाज़ बुलंद हुई ।

"सही कहत हो भाई ! इनकी औरतें त कलकत्ता भाग जात हैं, अउर इन चक्करों में हमारी बच्चियन भी आजकल भागे लागी हैं।" चौथी आवाज़ आयी। आवाजें ही आवाजें बिन शक्लों की आवाजें।

"देखत रहव, हम का करित है!" पप्पू अपने दांतों में फंसा जर्दा निकालते हुए चिल्लाया। पप्पू ताजा-ताजा प्रदेश अध्यक्ष बने बबली भैया का साला था। उसकी चमकदार त्वचा इस बात की गवाही दे रही थी कि

वह ज्यादा से ज्यादा पच्चीस-तीस साल का होगा। भीड़ के अंदर से रोने की दो तेज आवाज़ें आ रही थीं, गिड़गिड़ाती हुई आवाज़ें, जिनमें दर्द और हताशा साफ सुनाई दे रही थी।

गुप्ता ने गल्ले की चाबी कलुवा के हवाले की, मानो दुकान नहीं, किसी जागीर का वक्फनामा सौंप रहे हों।

"तू बैठ इहाँ, हम जरा देख आवत हईं बाहर का मंजर।"

गुप्ता जैसे ही भीड़ की देह से निकलकर बाहर आया, तो सामने का दृश्य एकदम 'समाज के साइड इफेक्ट्स' जैसा था। वो जो चेहरों पर रोने जैसा भाव लिए, आँखों में धूप, और बालों में धूल भर के खड़े थे—वो कोई ग़मी के लोग नहीं थे। ये वही मैले-कुचैले बच्चे थे, जो सुबह-सुबह अपनी पीठ पर बोरा लटकाए, एक लकड़ी के सिरे पर मुड़ा हुआ तार बांधकर गलियों में कूड़ा कुरेदते, उसमें दबे प्लास्टिक के थैले निकालते और बोरे में डाल लेते थे।

मुँह सूखा, आँखें खाली, कपड़े ऐसे कि धोबी भी देखे तो कह दे—"हमसे न हो पाएगा।"

उम्र?

ज़्यादा से ज़्यादा 12-13 बरस।

लेकिन पीठ पर बोरा ऐसा, जैसे जिंदगी का पूरा बोझ लादकर पैदा हुए हों।

गुप्ता खड़ा रहा, कुछ देर।

फिर सिर झुका लिया, जैसे नजरें मिल गईं हों किसी ऐसे सवाल से। जिसका जवाब मिठाई की दुकान में नहीं, संसद की कैंटीन में भी नहीं मिलता।

कुछ मुट्ठी भर अधपके हाथों में उन लड़कों की गिरेबानें थी। उन लड़कों की मैले कुचैली मुट्ठियों में कुछ धागे थे जो हवा में ऊपर की तरफ तने हुए थे और जिनके सिरों पर लहराते थे गंदले-से गुब्बारे—जैसे आसमान में उड़ने की नाकाम कोशिश कर रहे सपनों के प्रतीक।

वो गुब्बारे रंगीन नहीं थे।

उनमें कोई त्योहार नहीं था, कोई बचपन नहीं था।

तभी बबली भैया की प्रदेश अध्यक्ष वाली जीप धूल उड़ाती हुई वहां आ धमकी। उसका आना किसी तृतीय श्रेणी की मसाला फिल्म के क्लाइमेक्स जैसा था। जीप, जिसे देखकर लगता था कि चेसिस किसी ट्रक से उधार ली गई है और आत्मा किसी ट्रैक्टर से। बोनट पर गुड़ गोबर समाज पार्टी का मखमली झंडा लहरा रहा था, जो किसी आदर्शवादी परंपरा का झंडाबरदार कम, गोबर को सोना मानने वाले दर्शन का प्रतीक ज्यादा लगता था।

बबली भैया के गदबदे हाथ, जिनकी मोटी-मोटी उंगलियाँ अलग-अलग रंगों की आठ अंगूठियों से सज्जित थीं, उनकी पहचान का हिस्सा थीं। सफेद कॉटन के कुर्ते पर पान के दाग और उलझी हुई सोने की मोटी चेन, उनके व्यक्तित्व में एक विचित्र ठाठ जोड़ रहे थे। उनके मांसल कानों और घने, सख्त बालों के बीच झलकता उनका चेहरा, उम्र के पचास-

पचपन का होने का संकेत दे रहा था, लेकिन पेट उनके पूरे व्यक्तित्व पर भारी था। उनके मोटे कत्थई होंठ और औसत से तीन गुना ज्यादा हवा खींचने वाली उनकी नाक, गॉगल के नीचे छुपे गालों की कठोर हड्डियों को और अधिक उभार रही थी।

बबली भैया के साथ दो कार्यकर्ता थे, जिनकी उम्र और चेहरे की झुर्रियां उनके जीवन में खोए अवसरों और बढ़ती महंगाई के सबूत लग रहे थे। दोनों कार्यकर्ता जोशीले नारों के साथ जिंदाबाद के शोर में खोए हुए थे, "बबली भैया जिंदाबाद!- बबली भैया जिंदाबाद!"

बात सिर्फ गुब्बारों की नहीं थी, मसला गुब्बारों के मटमैले वजूद से कहीं गहरा था। ये गुब्बारे असल में कंडोम थे—वही कंडोम, जिसे इस देश लोग इस्तेमाल तो कर लेते हैं, मगर नाम लेने से ऐसे बचते हैं, जैसे किसी पवित्र स्थल पर जूते पहनने की कोशिश कर रहे हों। और ये इलाका तो गंगा-जमुना सरस्वती की त्रिवेणी का इलाका था, जहां संस्कृति का पहरा चौबीसों घंटे रहता है। अब ऐसे में बखेड़ा खड़ा होना तो तय था। बबली भैया, जिनके लिए हर चीज पश्चिमी साजिश और भारतीय संस्कृति पर हमला थी, ने इसे तुरंत विदेशी षड्यंत्र करार दिया। उनके मुताबिक ये कंडोम नहीं, बल्कि हमारे संस्कारों पर फेंके गए अघोषित गोले थे।

फिर क्या था, बबली भैया जीप की छत पर ऐसे चढ़े, जैसे कोई वीर योद्धा विजय पताका फहराने निकल रहा हो। नेता का स्वभाव होता ही है ऐसा—चाहे श्मशान हो या सड़क, हर जगह उसे मंच की ही तलाश रहती है। दो लड़के, जिनकी पतली टांगें कांप रही थीं, उन्हें बेधड़क भीड़ के बीच से खींचते हुए जीप के सामने खड़ा कर दिया गया।

गुप्ता, जो अब तक ऐसी घटनाओं को अख़बार के तीसरे पन्ने पर, चाय की प्याली और बिस्कुट के टुकड़े के बीच पढ़ता था—

आज पहली बार उसी अख़बार की सुर्खी को गली में चलते देखा। और यक़ीन मानिए, जब अख़बार की खबरें शरीर धारण कर लें, तो पाठक नहीं, प्रत्यक्षदर्शी बनना पड़ता है—वो भी बिना इजाज़त के।

इलाहाबाद की राजनीति, जो कभी केवल नाम बदलने की विनम्र परंपरा निभाती थी—

मसलन सिविल लाइंस को 'सुभाष चौक', या कटरा को 'संघमित्रा नगर' कह देने तक सिमटी रहती थी—अब पूरी तरह से सड़क पर उतर आई थी।

ना किसी मंच का इंतज़ाम था,ना कोई माइक,

बस एक शहर था—जो खुद एक रंगमंच में तब्दील हो चुका था।

भीड़ में अचानक 'जय श्री राम' के नारे ऐसे फूटे जैसे गली के स्पीकर में मिर्च लग गई हो।

बबली भैया के छुटभैया अनुयायियों को न जाने क्या ज्चार आया—उन्हें वो मैले-कुचैले लड़के राष्ट्रधर्म के अपराधी लगने लगे।

"हरामजादे! ई कंडोम अपने बाप्पन को पहिनावा!"

गालियों की ऐसी बौछार चली कि पीटने वालों की जुबान थक जाए। लात, घूंसे, धर्म और दाढ़ी—all in one पैकेज।

गुप्ता भी इस धार्मिक बवंडर में बहक गया।भीड़ के बीच घुसा तो ऐसे जैसे कोई छात्रनेता इलेक्शन फॉर्म भरने जा रहा हो—दृढ़ विश्वास और थोड़ा सस्पेंस लेकर।

गालियाँ दीं—और हाथ भी थोड़ा साफ कर लिए। भीड़ से निकलकर जीप के पास पहुँचा तो चेहरे पर वही तेवर चढ़ा जो आम तौर पर घोषित 'सच्चे हिंदू नेता' के बायोडेटा में होता है।

गहरी आवाज में बोला—

"तुम लोगन को और कोई जगह ना मिली? ई हनुमान जी के प्रसाद का स्थल है! और ये कंडोम उड़ावत फिरत हो! ब्रह्मचारी हनुमान जी का अपमान करत हो!"

बात ऐसी थी कि माइक भले ना था पर माइक टोन थी।

लोगों ने 'ठीक कहत हउअ गुप्ता जी' कहते हुए सिर हिलाए, और वहीं एक कोना चुपचाप मुस्कुरा रहा था— शहर का विवेक, जो अब तक सिर्फ़ गुब्बारों की शक्ल में हवा में टंगा था।

गुप्ता की बात में जोश था—ठेठ पंडिताई जोश, जिसमें धर्म भी था, दुकान भी, और भीड़ का फ्री का टीआरपी भी।

भीड़ को उसकी बात ऐसी जमी, जैसे किसी पुरानी रेडियो में सही फ्रीक्वेंसी लग गई हो।

माहौल ऐसा बन गया कि दो मिनट को गुप्ता को खुद भी लगने लगा— "ई भाषण त हमार पॉलिटिकल करियर का ट्रेलर हो सकत है।"

लेकिन पब्लिक की तालियाँ वहीं तक ठीक थीं, जब तक बबली भैया के कान में मिर्ची नहीं पड़ी।

बबली, जो भीड़ में ऐसे घूम रहा था जैसे कोई लाठी लिए चरवाहा भेड़ों को निहारता हो,

अचानक ठिठका—उसकी निगाह गुप्ता की दुकान पर पड़ी।

'छंगे हलवाई & संस, सीन्स 1857, इलाहाबाद'

बोर्ड पर इलाहाबाद ऐसा टंगा था जैसे आज़ादी के जमाने से बचा कोई अपशब्द हो। बबली की आँखें काले चश्मे के पीछे से वैसी हो गईं, जैसे कोई टीचर कॉपी में से नकल पकड़ ले।

"गुप्ता जी…"— बबली की आवाज़ में मिठास कम, चुना ज़्यादा था—

"अगर प्रयागराज में रहना है, तो इलाहाबाद वाला इतिहास खुद बनाइए। जइसे जल्दी हो सके, बोर्ड से 'इलाहाबाद' हटा दीजिए और 'प्रयागराज' लिखवा लीजिए। देख लीजिए, हमारे मुख्यमंत्री तो कब के मन बना चुके हैं, बस तारीख़ तय करना बाकी है। पर हमरी नज़र में ई शहर आज भी, और हमेशा—प्रयागराज ही रहा है। का समझे?"

ई बात सलाह नहीं थी, और ना ही निवेदन। ई वो किस्म की बात थी जो सत्ता की चप्पल पहने हुए आपके दरवाज़े पे खड़ी होती है—और कहती है, "बोर्ड बदलो, नहीं तो पोस्टर हट जाएगा।"

गुप्ता का चेहरा दो पल को वैसा हो गया जैसे उबलता दूध कटोरी में गिरते ही फट गया हो। कुछ समझ में नहीं आ रहा था—पहले बोर्ड बदलें या मिठाई का धंधा समेटें।

बबली ने फिर कोई चर्चा नहीं की— बस अपने मोटे हाथों से उन दोनों लड़कों को ऐसे उठाया जैसे वो ‘साक्ष्य’ नहीं, बोरे में भरा स्क्रैप हों,और जीप में बैठकर निकल लिया, पीछे छोड़ गया एक धमकी,जो अब गली के कोनों, चाय की दुकानों और बड़बोले पड़ोसियों की जुबान पर ‘कहानी’ बन चुकी थी।

गुप्ता वहीं खड़ा रह गया,

बोर्ड की ओर ताकते हुए,

और उसके कानों में अब भी बज रहा था—

"इतिहास बनना पड़ेगा..."

भीड़ धीरे-धीरे बिखरने लगी थी, लेकिन उस गंदी हवा में अब भी ‘जय श्री राम’ के नारे और तमाशे की बदबू घुली हुई थी। गुप्ता जी की दुकान पर ग्राहक फिर से आने लगे थे, जैसे कुछ हुआ ही न हो। उनके चेहरों पर वही जश्न था—पहले तमाशा देख लिया, अब मंदिर में माथा टेकेंगे। यह हमारे देश की विशेषता है—तमाशा और पूजा, दोनों का एक नीरस संगम। पूजा में तमाशा और तमाशे में पूजा।

शाम होते-होते तिराहों और चौराहों पर अलाव जलने लगे। इलाहाबाद के लोगों की यह पुरानी आदत थी—दिनभर की थकान अलाव के पास

बैठकर और जुबान की कसरत करके उतारते। तिराहे पर जलते अलाव के चारों ओर पुराने दुकानदारों की मंडली जुट गई थी। राजनीतिक चर्चाओं और गप्पबाज़ी का शोर गूंज रहा था। गुप्ता अपनी दुकान बंद करने की तैयारी कर रहा था कि तभी अलाव की तरफ से आती आवाज़ ने उसे ठिठका दिया। आवाज़ें हवा में घुली हुई थीं, मगर उनके मायने चुभते हुए।

"भइया, बोर्ड मा अब इलाहाबाद की जगह प्रयागराज लिखवाय का पड़ी।" कोई कह रहा था। आवाज़ में वो आदतन व्यंग्य था, जो इलाहाबाद के तिराहों की पहचान है।

एक और आवाज़ ने सुर मिलाया, "अउर सुने हौ? बबली भइया अपनी मार्केट क मुगलिया घोसित करवाए क चक्कर मा हैं, ताकि बाद मा कब्जा जमावे क पक्का बहाना मिल जाए।"

गुप्ता ने चाबी को ताले में घुमाया और कुछ पल रुककर तिराहे की तरफ देखा। उसकी आंखों में एक पल के लिए संशय की परछाई उभरी—ये बातें मज़ाक हैं या वाकई में कोई साजिश है?

गुप्ता ने अपनी चाल धीमी कर ली। अंदर कहीं एक हल्का डर उसके कदम रोकना चाहता था, लेकिन अलाव के किस्सों की जादुई खिंचावट उसे वहां खींच ले गई। इलाहाबाद की मिट्टी में ये अजीब आदत है—हर बड़ा सवाल यहां गप्प और बहस के धुएं में लिपटकर पहले तमाशा बनता है, फिर इतिहास। गुप्ता को ये तमाशा सुनने की बेचैनी भी थी और इसमें फंसने का डर भी।

इन्हीं दुकानों की कतार में एक दुकान ऐसी भी थी जो इलाहाबाद के दिल की छाल मानी जाती थी—इमाम साहब की पान की दुकान।

अब पान तो वैसे भी यहाँ एक रस्म है, लेकिन इमाम साहब का पान... वो नहीं खाया तो समझो दिल ने धड़कने से इनकार कर दिया।

इमाम साहब के पान में नशा नहीं था, मोहब्बत थी—हर बीड़ी-तम्बाकू छोड़के लोग उनके पान पर उतरते थे, जैसे किसी शायर की ग़ज़ल पर लोग वाह-वाह करते हैं।

“बुरा वक्त है इमाम भाई, बस एक पत्ता और रखना।”

और फिर घंटे भर वही दुकान शायरी का अड्डा बन जाती—

“तेरे गालों की पीक में जो रंग है इमाम,

किसी रंगरेज़ ने वैसा गुलाल न देखा।”

लेकिन वक्त की तरह पान भी महँगा हो गया। अब इलाहाबादी भी चूने का भाव पूछते हैं।

पीक गिराने से पहले जमीन देख लेते हैं—“सरकारी ज़मीन है ना?”

बस तभी से इमाम साहब की दुकान से शायरी की जगह मिमियाहट की आवाज़ आने लगी।

और मिश्रीलाल गुप्ता?

अब वो इमाम साहब की दुकान के पास भी नहीं फटकते। वजह दो थीं।

पहली, वही महंगाई वाली।

दूसरी, अंग्रेज।

हुआ यूँ कि एक दिन गुप्ता जी भर मुँह पान खा रहे थे—ठीक वैसे जैसे कोई श्रद्धालु गंगाजल पीता है।

और तभी सामने से अंग्रेजों की टोली आई।

गुप्ता जी ने जैसे ही पीक मारी, खांसी आ गई।

अब अंग्रेजों को कौन समझाए कि इलाहाबाद में पान और खांसी साथ चलते हैं—जैसे भजन में ताली।

पर उन्हें लगा, “Oh my god, he's vomiting blood!”

बस फिर क्या था!

गुप्ता जी को लपेट के सरकारी एम्बुलेंस में डाल दिया।

वो चिल्लाते रह गए—“अबे पान है पान! लहू नहीं!!”

पर अंग्रेज बोले, “Sir, don’t worry. You’re safe now.”

इलाहाबाद के एक शरीफ बनिए की ज़िन्दगी में पहली बार अंग्रेजों ने घुस के बिना टिकट इलाज करवाया था। गुप्ता जी को तब से पान से ऐसा डर लगा कि उन्होंने पान खाना ही छोड़ दिया।

शाम हुई , गुप्ता अपने मोहल्ले बरसाती मोहल्ले लौटा। थका हारा गुप्ता जब भी अपने मोहल्ले में कदम रखता, सामने वाले घर के लॉन में बैठे सीआईडी से रिटायर्ड अंकल से मुलाकात हो जाती। सीआईडी अंकल, जो

अपनी व्हीलचेयर के साथ सुबह-सुबह घर के बाहर पार्क कर दिए जाते थे, यही उम्मीद करते थे कि शाम को कोई न कोई पड़ोसी उन्हें वापस भेज देगा। मोहल्लेवालों की इंसानियत भी कभी-कभी उन्हें अंदर पहुँचा देती थी, लेकिन उनके साथ लटकती पेशाब से भरी थैली किसी की भी मानवता की परिभाषा से बाहर हो चुकी थी। अंकल, जिनके हाथों में हमेशा वह थैली होती, उसे किसी भी राहगीर को थमा देते थे, जो उन्हें अंदर पहुंचाने की मानवता दिखाता। उनकी आँखों में एक अजीब सी खौफनाक चमक थी, जैसे उन्होंने कुछ देख लिया हो, बस इसी चक्कर में चोर दिल लोग उनसे खौफ खाते थे। अब मोहल्ले के लोग भी उनसे दूर ही रहने लगे थे। घर में घुसने से पहले उसने सीआईडी अंकल को उनकी पेशाब की थाली समेत अंदर पहुंचाया और अपने घर में बबली की गूंजती आवाज़ के साथ दाखिल हो गया।

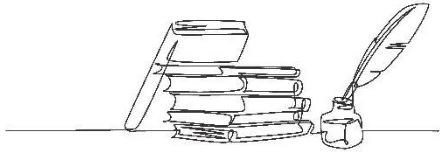

# आधा महल

अगली सुबह मिश्री लाल गुप्ता के घर का आँगन उस सुबह बड़ा ही अलहदा किस्म का सीन बना रहा था। हल्की धूप, ठंडी हवा, और उस पे इलाहाबाद की पहली ठिठुरती सर्दी—जैसे मौसम खुद भी ठिठक के देख रहा हो। धूप का बर्ताव ऐसा था, जैसे पुरानी हवेली की छत से कोई औरत खोंइछा भर-भर के गुड़ में लिपटे तिल उछाल रही हो — आँगन में बिछते ही वो धूप नहीं, जैसे यादें बन गई हों। नर्म, मीठी, चुभती भी और लुभाती भी।

आँगन के बिलकुल बीचों-बीच एक पुराना लकड़ी का तख्ता रखा था, जो सालों से हर मौसम झेल रहा है—गर्मी, सर्दी, और गुप्ता जी की डांट भी। तख्ते पर विराजमान थीं श्रीमती नीता गुप्ता—खोवा बनाने में ऐसी मसरुफ, जैसे खोवा ना बना रहीं हों, बल्कि पूरा देश चला रहीं हों। उनकी उँगलियाँ जिस रफ्तार से चल रही थीं, लगता था वित्त मंत्रालय का बजट खुद उन्हीं के हाथ में है—बस खोवा की जगह आंकड़े घोल रही हों।

बगल वाले घर से रोज़ की तरह आज भी टीवी पर ऊँची आवाज़ में चिल्लाता हुआ एंकर गूंज रहा था—जैसे मोहल्ले का कोई बागड़-बिल्ला माइक पा गया हो।

गुप्ता जी के पड़ोसी, दुबे जी के लिए टीवी का वॉल्यूम फुल करके न्यूज़ सुनना कोई आदत नहीं, बल्कि एक रिवाज है। मतलब सुबह होते ही टीवी चालू, और चैनल पर जो भी बकैती चल रही हो, उसको ऐसे पेश करेंगे जैसे UNO के प्रतिनिधि वही हों। और सबसे मज़ेदार बात ई है कि दुबे जी से कोई कुछ पूछे या ना पूछे, राय देना उनका नैसर्गिक अधिकार है—जैसे भारत सरकार ने उन्हें हर मुद्दे पर टिप्पणी करने का स्थायी लाइसेंस दे रखा हो। बाल ब्रह्मचारी, हनुमान भक्त, रुद्राभिषेक एक्सपर्ट दुबे जी कोई पाँच-सात साल पहले ही चित्रकूट से प्रवास करके बरसाती मोहल्ले,मुठ्ठीगंज में आ बसे थे। पर जनाब के बारे में इससे ज़्यादा कोई कुछ जानता हो, ऐसा आज तक सुनाई नहीं पड़ा। लेकिन उनकी टाइमिंग ऐसी रही कि मोहल्ले में रेंडम टाइम पर टपकने और बोलने की आदत ने उन्हें एकदम परमानेंट टाइटल दे दिया—"रेंडम दुबे"।

अब मोहल्ले के लोग बेचारे बस मंगलवार का इंतज़ार करते हैं—काहे कि मंगलवार को दुबे जी बड़े जतन से लेटे वाले हनुमान जी को लड्डू चढ़ाने निकल पड़ते हैं। वही एक दिन होता है जब मोहल्ले में न कोई ब्रेकिंग न्यूज़ गूंजती है, न कोई एक्सक्लूसिव एक्सपर्ट व्याख्यान। लोग चैन की साँस लेते हैं, और मोहल्ला ऐसा सुकून पकड़ता है जैसे किसी ने पंखा तेज़ कर दिया हो गर्मी में।

आज मंगलवार नहीं था ... इसलिए आज फिर से सब का मूड उखड़ गया था। टीवी पर वही पुराना बागड़-बिल्ला एंकर चिल्ला-चिल्ला के गला फाड़े जा रहा था—“इलाहाबाद अब प्रयागराज!”

मिश्री लाल गुप्ता जी तो सुनते ही गुस्से में खौल उठे। बोले—"ई का मजाक है भइया? ई त वही बात हो गइल, जैसे बीमार आदमी को डॉक्टर बोले—‘तुम्हारा नाम बदल दो, अब से रामलाल नहीं, सेहतलाल कहलाओ, और बिना दवा के ठीक हो जाओ।’”

अंदर किचन में चाय की पतीली खदक रही थी। चाय की भाप बार-बार उफनकर ऊपर उठती, लेकिन हर बार गैस की लौ से टकराकर शर्मिंदा होकर वापस गिर जाती। चाय भी जैसे मिश्री लाल के मूड का हाल बयाँ कर रही थी।

"देखत हउअ?" मिश्री लाल कुल्ला करते बोल पड़े, "नाम बदले से लागत है सब कुछे बदल जाई। जइसे नाम बदलते ही महँगाई भाग जाई, गरीबी त उड़ के पाकिस्तान चली जाई अउर सतयुग के एगो नया ऐप मोबाइल मा इंस्टॉल हो जाई!"

नीता खोवा का करछुल लहराते हुए बोली, "सरकार हौ बबुआ, जवन कुछ्छू ना करे, ऊ सबसे ज्यादा कर डाले के ढोंग करत है। चाय देख लिहा—अबहिन नहीं सम्हाले त ओकरे नाम बदल के ‘खीर’ होई जाई!”

तभी सड़क से आती आवाज़ एक सुनाई दी—“आज से हमनी प्रयागराजी होइ गइनी, भैया!” फिर उसी बात पर हंसी का ठहाका गूंजा।

उन्ही सब आवाज़न के बीच दुबे भी घुसे, "हम बताते हैं, सुनऽ तो सही..."

ये तो रोजे का नियम था। पहिले 'ब्रेकिंग न्यूज़' के नाम पे भंड कचरा अउर फिर उसी टूटी फूटी खबर पे मोहल्ला बहस मंच।

अब गुप्ता अउर उनका परिवार का क्या कसूर? पुश्तैनी मकान जो तिराहे पे था। तिराहे पे एक ठो आटा चक्की, एक बगल दुबे के हवेली अउर दुसरी ओर सीआईडी अंकल का किला। सबेर सबेर दुबे जी की टनाटन सभा, चक्की के चट-चट, अउर दिन भर मोटर-गाड़ी के गर्र-गर्र—गुप्ता लोगन का कान फाड़ देता है।

पर गुप्ता जी की नजर में उनके जीवन के समस्त दुखों की जड़, ना सरकार थी, ना समाज, और ना ही बबली भैया—बल्कि उनका अपना मकान था। और वो भी कोई साधारण मकान नहीं, त्रिकोणीय। अब त्रिकोण आकार भी कोई घर का होता है? ऊपर से उस त्रिकोण के एक कोने में, मोहल्ले का तिराहा बनाते हुए, एक पीपल का पेड़ उगा बैठा था—जैसे किसी ने वास्तु दोष का लैंडमार्क लगा दिया हो। अब आप सोचेंगे कि मकान से क्या दुश्मनी? अरे जनाब, वो कोई साधारण मकान नहीं था, त्रिकोणीय था।

तीन कोने वाला घर!

जैसे किसी इंजीनियरिंग कॉलेज के छात्र ने एल्गेब्रा के प्रेम में दीवारें खड़ी कर दी हों।

गुप्ता जी सालों से उस पेड़ को हटाने का सपना देख रहे थे,

लेकिन दिक्कत ये थी कि त्रिकोण को चौकोन में बदलने के लिए एक दीवार और चाहिए थी।

और वो दीवार...दीवार कहाँ थी, सरकारी योजना की तरह बस कागज़ पर थी।

खर्चा इतना था कि लगता था जैसे दीवार भी खुद बजट पास होने का इंतज़ार कर रही हो—कहीं नगर निगम की मीटिंग में बैठे हाथ जोड़ के बोल रही हो: "मालिक, कब मंज़ूरी दोगे?"

उहाँ, भीतर वाले छोटे कमरे में छोटी बिटिया खुशबू रजाई में घुसी मुँह काढ़े बैठी थी। सामने किताब खुली थी, जाकिर उसे उन पन्नों से कहीं ज्यादा दिलचस्पी उन पलों में थी जो उसकी गोद में रखा मोबाइल अपनी स्क्रीन पर झिलमिलाते हुए दिखा रहा था। ठंडी अइसी कि मुँह से भाप उठ रही थी, बाकिर उसकी अंगुरी मोबाइल की स्क्रीन पर अइसी सरक रही थीं, जइसे वो किसी और ही दुनिया में खो गई हों। कमरे में हीटर की गुनगुनाहट और मोबाइल पर आ रही धीमी आवाज़ मिलकर कुछ ऐसा माहौल बना रहे थे, जइसन कउनो गुप्त, रहस्यमयी दुनिया का दुआर अचानक खुल गया हो। उसका चेहरा मोबाइल की हल्की रोशनी में नहाया हुआ था, आँखों में वही अजीब-सा संघर्ष—सर्द सुबह की नरम ठंड और भीतर उठती हल्की गरमी का टकराव। तबहीं बाहर से बप्पा की आवाज आयी, “खुशबू... जाग गईलू का, बिटिया?”

उसकी उंगलियां कांपीं। दिल एकदम से धड़क उठा। मोबाइल झट से बंद हुआ अउर किताब का पन्ना ऐसे पलटा जैसे वह वाकई पढ़ रही हो।

"हाँ पापा, जग गइयॉ!" उसने कहा, आवाज़ में सुबह का झूठा आलस घोलते हुए।

वहीं, आँगन के कोने में, बड़ा बेटा आलोक अपनी स्टील की बक्सिया में किताबें ठूंसने की जद्दोजहद में जुटा था। उसका मन न तो किताबों में था और न ही बक्सा जमाने में। असल में, उसका ध्यान सिर्फ चाय पर था शायद चाय भी इसी इंतज़ार में खीर बनी जा रही थी कि उसे चूल्हे से कौन उतारेगा ।

“अरे माई! चाय बनी कि नाहीं?” आलोक की आवाज़ में अब केवल भूख नहीं, एक बेचैन छटपटाहट घुली थी। “पेट में अब चूहे नहीं, हाथी दौड़ रहे हैं!” कहता हुआ उसने बक्से का ढक्कन ऐसा पटका, मानो दुनिया की सारी नाराज़गी उसी पर उतारनी हो।

नीता गुप्ता अब पेड़े के सांचे में खोया-चीनी ठूस रही थीं। आँख उठाए बगैर बोलीं। “किचन में जाओ और चुपचाप चाय उठाकर ले आओ। यहाँ कोई नौकर नहीं लगा जो तुम्हारे हाथ में कप धराएगा।”

आलोक ने होंठ भींचे, बक्से का ढक्कन कसकर खींचा, और जैसे ही मुड़ा, एक और ख्याल बिजली-सा कौंधा। वह तेज़ी से पिता जी के पास पहुँचा, बिजली का बिल उनके सामने इस अंदाज़ में पटका जैसे कोई दस्तावेज़ नहीं, जंग का ऐलान हो। फिर बिना एक शब्द कहे किचन की ओर बढ़ गया। कुछ ही पलों बाद, दोनों हाथों में दो चाय के कप लिए लौटा और जैसे कोई युद्ध जीत कर आया हो, वैसे बोला—

“पप्पा, ई देखीं। पुश्तैनी महल त मिल गवा है आपको, पर इसका मेंटेनेंस के चक्कर मा आप अपने बच्चन के मेंटेनेंस पर ध्यान देवे क मौका नाहीं पावत हैं।” आलोक की आवाज में शिकायत का मीठा पुट था, बाकी चेहरे पर खिसियाहट। मिश्री लाल ने अखबार से नजरें हटाईं अउर चश्मे को नाक के ऊपर धकेलते हुए पूछा, “बिल बहुतै ज्यादा आ गवा का?”

“सर्दी के मौसम मा बिजली के बिल जियादा कइसे आ सकत हौ?” नीता ने झल्लाकर पूछा।

“हम तो इनसे कहते हैं कि कटिया फँसा लिया करो, पर ई सुनत कहाँ हैं?” पास बैठा आलोक  चाय का कप हाथ में लिए लंबी चुस्की लेकर बोला। उसकी बात में शरारत और बेबसी का अजीब मिश्रण था।

मिश्री लाल ने बिल अइसे घूरा जइसे उसमें कौनो भूत-प्रेत बइठा होय! आँख मिचकाइके, चश्मा सरकाइके बोले— "अबे कटिया डाल दें का? अउर धराइल गए त? पुलिसवा आए के जूता बजाई देई, फिर पूरा मोहल्ला कहिहे — देखो देखो, मिश्रीलाल के खानदान के करंटवा चोर! अरे हमसे ना होई बबुआ! तोहरे चक्कर मा त माई-बाप नैनी जेल में चना चबावत मिलीं!"

"अरे पप्पा, ई न भूलीं कि हम वकालत पढ़त हई! संविधान के एक-एक धारा याद बा हमके! तनी सा बोलब त कोर्ट भी खामोश हो जाए!" आलोक अइसे  बोला जैसे बंबई से सीधा कोर्ट का सेट उठा के ले आया हो। हाथ हवा में लहराता, चश्मा सीधा करता, मानो केस जीत के अभी-अभी बाहर निकला हो।

मिश्री लाल कुर्सी पर बैठे, किटकिटाते हुए बोले— "अबे पहिले वकील बनि ल, तब हमके संविधान सिखइह! अभी तो तू स्टेशन पे फॉर्म भरावे लायक ना भइल, !" उनकी आवाज़ मानों जैसे गंगा आरती के माइक से झर रही हो। चेहरा एतना गंभीर, जैसे अभी कोर्ट रूम में "आर्डर-आर्डर!" चिल्ला देंगे। फिर ऐसी  नज़र डाली आलोक पर, जैसे कहना चाह रहे हो— "तोहार सजा—दो साल कटिया केस में जेल, अउर बकिया बड़बोलापन खातिर घर से बाहर!"

आलोक चुप हो गया। धीरे से बकसा उठाया, एक ठो गहरी सांस लिया, अउर बोले बिन पलटी मार के निकल लिया, पर गुप्ता का जनरेटर अब भी चालू था।

“तुमसे हजार बेर कहे हैं कि सभ्य विद्यार्थी जइसन झोरा लैके कॉलेज जाया कर। ई लटकत बक्सा लैके कइसे पढ़ाई करत हो?” मिश्री लाल का गुस्सा अब उबाल मारने लगा था।

आलोक मुस्कुराया, जैसे वह पापा के गुस्से का आदी हो। बोला, “अरे पप्पा, वकालत मा खाली टैलेंटेड होना जरुरी नाहीं है, भीड़ मा अलग दिखना भी पड़त है। कौवन के झुंड में अलग दिखना कितना मुश्किल बा, ई आप नाहीं समझब। आप त बस दुकान चलावत रहव।”

यह सुनकर मिश्री लाल का गुस्सा थोड़ा ठंडा पड़ गया, लेकिन उन्होंने चेहरे पर गंभीरता की मूर्ति बनाए रखी। बोले कुछ नहीं, पर अंदर ही अंदर सोच रहे थे कि ई लड़का आखिर जाएगा कहाँ!

"जाओ, जो करना है करौ। लेकिन ई याद रखिहा, हम तुम्हारे कॉलेज के इन नखरन खातिर अपनी कमाई बर्बाद नाहीं करब।"

"अरे पप्पा, एक बार हमका कमाए द्या, चाँदी के बकसिया लैके जइब।" आलोक जूते पहनते हुए बोला।

"हम त कहित हईं कि सोने की बकसिया लैके जइयो, फेर जब कउनो केस ठोक देई, त जिंदगी भर अदालत मा ई प्रूफ करत फिरेव कि कहाँ से लूट के लाए रहे इतना सोना!" पापा की बड़बड़ को अनसुना कर आलोक बक्सा उठाकर घर से बाहर निकल गया। पीछे से नीता गुप्ता ने आवाज लगाई, "सुनत हउ, रोटियन खा लिहा। फेर बाहर जा के मत कहइयो कि घर मा भूखा रखिन।"

खुशबू, जो अब तक रजाई के अंदर छिपी थी, ठहाका लगाकर हँस पड़ी।"देखव जी, कइसन औलाद पैदा कई हउ आपन।" नीता ने तख्त से उठते हुए कहा।

"अब छोड़ो भी। सबेर सबेर ई बिल, आपन शहर का नामकरण अउर तुम्हार लडक़वा की कारिस्तानी —ई सब एक्के संग नाहीं संभालि सकित।" मिश्री लाल ने गहरी साँस लेते हुए कहा। नीता ने खोये से दो तसले पेड़े तैयार करके जैसे कोई युद्ध जीत लिया हो, और अब जाकर पहली चाय के लिए साँस लेने की मोहलत पाई थी। वैसे भी, पेड़े बनाने का महान काम वो हफ्ते में सिर्फ सोमवार को करती थी, और बाकी दिन खोआ तैयार करती थी।

"कसम से, इ हालात देख के त लागे कि खोवा मंडी में खोवा बेचत त जियादा मुमाफा के काम होत! आप कहिए त हम टिफिन-विफिन चालू कर दीं — कम से कम चूल्हा त जलत रही!"नीता चाय का कप लेकर तखत में बैठते हुए बोली।

मिश्री लाल ने सिर हिलाया, “ना, तुम छोड़े द्या। तुम्हार ई टिफिन के चक्कर मा घर के काम अउर बिखरि जइहीं।”

तभी परछत्ती से आवाज़ आई— "ए गु ुप्ता जी!"

सबने चौंक के ऊपर देखा—सुधा आंटी, गुप्ता जी की पड़ोसिन, हाथ में कैमरा लेके छत में हाजिर! अपने आप को ब्लॉगर भाभी कहती। और जब से श्रीमती का चैनल मॉनिटाइज हुआ , श्रीमती ने मुहल्ले का जीना दुश्वार कर रखा था। जहाँ नहीं तहाँ किसी सनसनीखेज रिपोर्टर की तरह कैमरा लेके पहुंच जाती है।

"हेलो गाइज ! मै ख्वाबो की सहजादी और आपकी भाभी सुधा ! तो जैसा की आप लोग जान ही गए होंगे कि हमारी नीता दीदी अपना टिफिन सर्विस शुरू कर रही है। नीता दीदी कमाल का खाना बनाती है। मै तो हमेशा से चाहती थी कि नीता अपना काम शुरू। क्यों कि एक औरत होने के नाते मै समझती हु कि जब मैंने अपना ब्लॉग शुरू किया तब मुझे कितनी मुश्किलों का सामना करना पड़ा। इस देश में औरत अगर ......... " फिर कुछ देर तक वो ऐसे ही बोलती रही। आपकी जानकारी के लिए बता दू कि श्रीमती अभी ताजा ताजा फेमिनिस्ट बनी थी और जब से फेमिनिज्म का भूत सवार हुआ था वो स्लीवलेस मैक्सी में आ चुकी थी।

मिश्री लाल माथा पीटते फुसफुसाए—

"हे भगवान! अब त लगत बा, हमरे घर के नाम 'गुप्ता कैटरिंग सर्विस' लिखवावे के टाइम आ गइल!"

रोज की तरह आज भी सीआईडी अंकल अपने घर के लॉन में पार्क कर दिए गए थे। मिश्री लाल गुप्ता अपनी नीली लूना पर सवार होकर अपनी दुकान की ओर रवाना हुए। लेकिन आज उनकी लूना ने एक कराह भरी, और जैसे अपनी ही भाषा में कहा—"बस बहुत हुआ!" मिश्री लाल ने दो झन्नाटेदार ठोकरें मारीं, जैसे लूना की आत्मा को हिलाने की कोशिश कर रहे हों।

उधर, रैंडम दुबे अपने घर के बाहर चाय की चुस्की लेते हुए मुस्कुराए, "गुप्ता जी, ई लूना नाहीं, इतिहास हौ। कबाड़ में दीजिए इसे अउर नई स्कूटी लाओ। देखिए न, इलाहाबाद तक नाम बदल के प्रयागराज हो गया — आप अबहूँ लूना से चिपके हैं!"

मिश्री लाल का जवाब तैयार था, "हम ठहरे पुराने जमाने के आदमी। नई स्कूटी-वूटी के चोंचले नहीं पालते।"

दुबे जी हँसते हुए बोले, "ठीक है, लेकिन ई लूना को तनी ठीकवा करा लीजिए। मोहल्ले के बच्चे हर बार धक्का मारें, वो भी तो शोभा नहीं देता?"

कुछ झेंपते हुए, मिश्री लाल ने लूना को घसीटा और चंदन की वर्कशॉप की ओर  बढ़ गए। वहाँ पहुँचे तो चंदन, ग्रीस में सना हुआ, एक ट्रैक्टर के पहिए से जूझ रहा था। उसने सिर उठाकर कहा, "मिश्री भैया, फिर से लूना का नखरा?"

“नखरा नाहीं, ई तो हमार शाही सवारी है,” मिश्री लाल ने अपने दिल के करीब वाली बात कही। चंदन ने हँसकर जवाब दिया, “अरे शाही हौ त शाही खरचा त माँगबे करी ना।”

चंदन अभी लूना की साँसें ठीक से जांच भी न पाया था कि मिश्री लाल की नज़र सड़क के उस पार अटक गई—जहाँ उनकी बिटिया खुशबू, एक लड़के संग ऐसे हँस-हँस के बतिया रही थी जैसे देश की GDP उसी के ठहाकों से ऊपर चढ़ रही हो। उसकी मुस्कुराहट, बेलौस ठिठोली और ‘मैं तो ऐसी ही हूँ’ टाइप बेपरवाही ने मिश्री लाल के भीतर वो घबराहट पैदा कर दी जो संविधान में शायद "पिता-पन" के अंतर्गत सुरक्षित रखी गई है।

अब देखिए जनाब, ये वही खुशबू है—साइंस साइड की हाई स्कूल टॉपर। नाम मत लीजिए, गाँव की लुगाइयाँ अब भी उसके रिज़ल्ट कार्ड को नींबू-मिर्च के साथ टांग के घर की नज़र उतारती हैं। एक बार तो इन्वर्टर के तारों में ऐसी घुसपैठ कर दी कि बिजली विभाग खुद चकरा गया—सम्मान पत्र देते वक्त अफसर साहब की शक्ल कुछ वैसी ही थी जैसे भैंस ने लैपटॉप चला दिया हो। मुख्यमंत्री जी ने ‘करंट-से-करे-काम’ योजना के तहत ट्रॉफी भी दी—और शक यही था कि कहीं ट्रॉफी भी छूते ही झटका न दे दे।

अब उस देवी ने एक ऐसा रिमोट बनाया, जो ऊपर से तो लेडी पर्स था, अंदर से सीधा 'शक्तिमान' की मौसी। जिसे छेड़ने की कोशिश भर करो, और आत्मा से लेकर आधार कार्ड तक सब झनझना उठे। पर भैया, बिटिया चाहे लेब में रॉकेट बना ले, बाप का दिल तो सिगनल पे खड़ी पुलिस की तरह हर अजनबी को संदिग्ध ही मानेगा।

“ई का गुल खिलावत हौ?”—मिश्री लाल जी ने मन ही मन बड़बड़ाया। माथे पर चिंता की लकीरें ऐसे फूटीं जैसे सूखे खेत में पहली दरारें—बस पानी की जगह चिंता का पसीना था।

और फिर क्या? बिना टाइम गंवाए, मिश्री लाल ने सीधे ‘राष्ट्रीय संकट प्रबंधन प्रकोष्ठ’, उर्फ़ अपने लाडले आलोक को कॉल ठोक दिया। उधर आलोक, जो खुद को हाईकोर्ट का वकील मानता था, अपने दोस्त की स्प्लेंडर सहित प्रकट हुआ।

सीन देखा, और बिना प्रोफाइल चेक किए, सीधे लड़के की तरफ झपट पड़ा—मानो ‘कौन बनेगा अपराधी’ का एपिसोड शुरू हो गया हो।

"नाम का है तोहार बे?"

"र...राजू," – लड़का इतना घबराया कि जैसे ‘राजू’ नाम भी उसे उधार लेना पड़ा हो।

आलोक ने आवाज में वही रौब घोल दिया, जो नेताओं के बच्चों को बाप की कुर्सी से मिल जाता है—"सुन ले, अगली बेर बहिन के लगे-लगे देखे गए, तउ सीधे चौकी मा गप्प ठुकाई होई!"

अब बेचारा राजू—जिसका इरादा सिर्फ दो मिनट खड़े रह के सांस लेने का था—उसकी तो आत्मा भी स्पीड ब्रेकर फांदती हुई भाग निकली।

लेकिन जाते-जाते, आलोक अपनी बहिन को वो सलाह दे गया जो संयुक्त राष्ट्र भी नहीं देता—'देख बहिन, ई मोहल्ले के मासूम लौंडन को छेड़ना बंद कर दे। तुम्हरे अंदर अब भी कुछ 'लड़की टाइप' हरकत बची है

कि सब सिस्टम से हट गईं? ऊपर से उ करेंट मारक डिवाइस, जिसे तूने अविष्कार बताया था — उसका असर तो ऐसा है कि अब लड़के बिटियन के बगल से भी गुज़रते हैं तो हेलमेट पहन के जाते हैं।

और अगर तुम ऐसे ही खुलेआम, दिन दहाड़े, लड़कों को छेड़ती रही — तो यकीन मान, एक दिन पूरा लौंडा समाज हिमालय निकल जाएगा सन्यास लेके! फिर मत बोलना कि मोहल्ले में कोई बचा नहीं जिसे घूर सको!"

और इतना कह के वो अपने बक्से के साथ यूनिवर्सिटी की ओर निकल लिया—मानो देश की संस्कृति बचा कर ले जा रहा हो।

उधर मिश्रीलाल जब दुकान पहुंचे, तो देखिन कि दुकान बिलकुल सुनसान पड़ी रही। कौनों ग्राहक-ग्राहन नहीं, बस धूप अउर सन्नाटा।

दुकान में घुसते ही गुप्ता बोले –

"अरे कलुआ! ई बता, ई सुबह-शाम की दुकानदारी मा का धरा है? कौनों भविस्स है भी का? कि बस यूहीं लाला बने फिरत हैं?" उनकी आवाज़ में खुदे के ऊपर एक ताना झलक रहा था, जैसे अपने आप पे हँसते-हँसते खुद को कचहरी में खड़ा कर दिए हो।

कलुआ हँसा जरूर, पर उसकी हँसी में मिठास नहीं, एक किसिम का कसैलापन था — जैसे बचपन में देखे गए सपने अब बस जलते अंगारे बन के रह गए हो।

"दद्दा," वो बोला, "आपका भविस्स तौ कब का पटरी से उतर चुका। अउर हमार... हमार त कभी चालू भवा ही नाहीं। सोचें हैं, प्लास्टिक सर्जरी कराइ के, गोरे हो जाईब। फेर बाबूजी के मरै के बाद,  उहे मंदिर मा बइठ जाएब — जउनसे हमका खाली हमार रंग के चलते बाहर कर दिहे रहेन।"एक पल को चुप्पी छा गई। कलुआ की बात में जो तल्ख सच्चाई थी, वो मिश्रीलाल के गले में अटक के रह गई।

मिश्रीलाल झटके से गला खंखारते बोले —

"अरे, हम तो तोहरे ही भविस्स की बात कर रहे रहेन, बेटा..."

"ई देखो सब ढोंगिया लोगन के करामात! सौ ग्राम मिठाई चढ़ाके भगवान के माथे लाख-लाख का कर्जा ठेल देते हैं। अब त भगवान पर हमको ही दया आ रही है।" कल्लू तो ऐसे बकझक करने लगा जैसे पचास साल की बुढ़िया भूतहा मरघट में डरावनी कहानी सुना रही हो।

"अब त लड़या-गट्टा भी चढ़ाने लगे हैं प्रसाद में! दस रुपइया की लड़या में बिटिया के बियाह, लरिका के नौकरी, बाप-दादा की जायदाद... सबै कुछ भगवान से ठेंठई मांग लेते हैं। अरे भइया, ई कौन ईमानदारी है? भगवान के त पागल समझ लिए हैं ई देश के लोगन ने," कलुवा ने घिघियाते-घिघियाते सब भड़ास उगल दी, जैसे दिल में सालों से जो भट्ठी धधक रही थी, अब फूट पड़ी हो।

मिश्रीलाल के मन में अइसन बवंडर उठा कि जैसे अंधरिया कोठरी में अचानक सूरज घुस आया हो। अब वो साफ-साफ देख पा रहा था—सामने बस एके राह बचा था: अब बस गोलू की मुहर थी! "...ताकि ज़िंदगी के नए

पन्ने परअपना सही वाला अंगूठा ठोंक सके, अउर कह सके—'हौऽऽ, अब शुरुआत इहाँ से होइ।'"

वह जानता था, दिन-ब-दिन भगवान पर चढ़ाए जाने वाले प्रसाद का स्तर गिरता जा रहा था। लड्डू से शुरु हुआ सिलसिला अब बूंदी और फिर बतासे तक आ पहुंचा था। अब भक्त भी मन्नत पूरी होने पर लड्डू चढ़ाता था, जैसे वह भगवान का कर्ज चुकता कर रहा हो।

ये सब सोच-सोच के गुप्ता की छाती में एक अजीब सा डर समा गया। डर अपने धंधा का—कि कहीं भगवान के नाम पर चल रहे इस कारोबार में भी मंदी न लग जाए!

इधर दुकान के सामने गमछा-गठरी में लिपटे लोग ऐसे जमा हो गए जैसे खेत में मेंढ़क बारिश की पहली बूँद पर टर्र-टर्र करने लगते हैं। मोटरसाइकिलों का एक जत्था सड़क पर ऐसे उतरा जैसे किसी लोक देवता की बारात निकली हो—बीचोबीच बबली भैया की जिप्सी, जो इतनी बार जुलूस में घुमा ली गई थी कि अब खुद को म्युनिसिपैलिटी की गाड़ी समझने लगी थी।

पीछे-पीछे मोटरसाइकिलों पर नारे फूट रहे थे, जैसे किसी कवि सम्मेलन में गलती से अखाड़ा लग गया हो:

"मुग़ल मिटे, नाम बदला है,

अब जाके प्रयागराज संभला है!"

बबली भैया जीप पर खड़े थे, हाथ में मेला-ग्राउंड से खरीदी गई चमकदार पन्नी में लिपटी एक नकली धनुष-बाण, जो देखने में रामायण कम और क्रेच से उठा हुआ प्लास्टिक ज़्यादा लगता था। वह मुगलिया कहकर चिन्हित की गई दुकानों की ओर बड़े शौर्य से निशाना साध रहे थे, जैसे अभी वहीं से इतिहास बदल जाएगा।

और पीछे एक लोडर पर बज रहा था 'जय श्री राम' वाला डीजे, जिसकी बेस इतनी तेज थी कि आसपास की भैंसें या तो भक्ति में लीन हो गई थीं या बहरी । गाड़ियों पर चिपके पोस्टर ऐसे चमक रहे थे मानो प्रयागराज खुद झुक के स्वागत कर रहा हो:

"प्रयागराज आपका हार्दिक स्वागत करता है!"

सड़क पर जो दृश्य था, वह आधा ‘धार्मिक चेतना’ था और आधा टेंट हाउस से आई साउंड सर्विस की उपलब्धि।

जैसे ही जुलूस दुकानदार इमाम साहब की दुकान के सामने से गुजरा, वहाँ लोग ऐसे जमा होने लगे जैसे किसी ने दुकान पर नीलामी का बोर्ड टांग दिया हो। चेहरे वही थे—उजले नहीं, डरे हुए; और डर भी कोई ताज़ा नहीं था, बल्कि पुराना, पका-पकाया, जैसे सरकारें हर कुछ साल पर उसे दोबारा गर्म करके परोस देती हों।

कस्बे की जो पुरानी मार्केट थी—जहाँ कभी आदमी चीज़ें खरीदने आता था, अब वही जगह इतिहास का खंडहर घोषित की जा चुकी थी। बबली भैया के चमचे उसे "मुग़लिया इमारत" कहने लगे थे, और उस नामकरण में

ऐसी दृढ़ता थी, जैसे किसी को मुगलिया खानदान से जोड़ा जा रहा हो, बिना उसकी रज़ामंदी के।

मिश्रीलाल वहीं खड़ा सोच रहा था—*सरकारें असल में जादूगर होती हैं।*

*जिनके पास कुछ नहीं होता, उन्हें सब कुछ दे सकती हैं; और जिनके पास सब कुछ होता है, उनसे उनकी ज़मीन, दुकान, इतिहास और नाम तक ले सकती हैं—बिना किसी चिल्ल-पों के, बस एक नई योजना के नोटिफिकेशन से।*

उधर, इमाम साहब ने धीरे से एक वाक्य छोड़ा, ऐसा जैसे कोई सुई रख दे सूती चादर पर—"सुना है, पुश्तैनी जायदाद पर मुआवज़ा नहीं मिलता।"

वाक्य छोटा था, असर लंबा।

इमाम साहब की पान की दुकान पर जमा दुकानदारों के चेहरे से खून गायब हो गया। माथों पर पसीना ऐसा चिपक गया जैसे किसी ने पुराने फ्राई पैन से तेल छिड़क दिया हो।

अब उन्हें डर अपने वजूद का नहीं, अपने दुकान की जमीन का था—कहीं सरकार कह दे, *"यह इमारत तो हमारी निकली, मुगलकालीन धरोहर है!"*

गुप्ता, ये सब सोचता हुआ कलुवा को दुकान पर बैठा के गोलू के घर की ओर निकल लिया। पीछे से कलुवा चिल्लाया—

"लड्डू ले लो! हनुमान जी को चढ़ा देना मालिक! मन्नत मांग लेना!"

गुप्ता ने उसकी बात को ऐसे हवा में उड़ा दिया जैसे चुनाव के वादे—सुने जाते हैं, माने नहीं जाते।

गोलू मिश्रा, इलाहाबाद के घोषित 'दीनू भइया' यानी दीनदयाल का इकलौता लाड़ला था — वही दीनदयाल जिनकी सद्गति दो साल पहले हो गई थी और जिनकी पत्नी, गोलू की माँ, तो पहले ही संसार-त्यागी बन चुकी थीं, भले ही उस त्याग में कोई आध्यात्मिकता नहीं थी, केवल बीमारी और बदनसीबी थी। अब बचे गोलू और गुप्ता — जो पहले सिर्फ "मित्र के पुत्र" थे, और धीरे-धीरे "मित्रवत पुत्र" बन गए।

गुप्ता, उम्र में पचास पार कर चुके, और गोलू, तीस की देहरी पर लुड़कता हुआ, दोनों के बीच एक विचित्र किस्म की लौंडाई वाली दोस्ती पनपी थी। मोहल्ले की भाषा में कहें तो 'बाप-बेटे की बॉन्डिंग' में 'चमचों वाली चिकनाई' और 'बचपन की बेफ़िक्री' का संकर था। गुप्ता को जब गोलू मुस्कुराता दिखता, तो उसमें दीनदयाल की हल्की सी झलक दिखाई देती।

गोलू उम्र में भले ही गुप्ता का आधा था और उपनाम से मिश्रा था , पर व्यापार में वो पूरा बनिया निकला — वो भी एक्स्ट्रा प्रीमियम एडिशन। माल सीधे चीन से मँगवाता था, और बेचता लोकल दुकानदारों को — यानी राष्ट्रभक्ति और मुनाफ़े की जोड़ी बनाकर। वो व्होलसेल का काम करता था। ट्रेंडिंग सामान चाइना से इम्पोर्ट करता और जो सामान डिमांड में आ जाता उसको थोक में बेचने लगता।

पश्चिम में सूरज अपनी लाल चादर खींचकर विदाई की तैयारी कर रहा था। उसी समय गुप्ता मोहल्ले की उस भूली-बिसरी गली में प्रवेश कर रहा था, जहाँ गोलू का घर था। गोलू के घर के बाहर खड़ी वही पुरानी सेंट्रो, धूल की मोटी परत के नीचे दबी, जिंदगी की उस भागमभाग का प्रतीक थी जिसमें कर्ज के पैसों से ख़रीदी गई गाड़ियाँ भी आख़िरकार धूल ही इकट्ठा करती हैं। सेंट्रो के पिछले टायर के नीचे छिपी चाबी – इस भरोसे का प्रतीक कि इस छोटे से कस्बे में अभी भी कुछ तो बचा है जो हमें एक-दूसरे पर विश्वास दिलाता है। गुप्ता ने चाबी उठाई और चुपचाप अंदर चला गया।

कुछ ही क्षणों में गोलू भी आ पहुंचा, मानो हवा ने उसे ख़बर दी हो कि शाम के इस ढलते पहर में उसकी उपस्थिति आवश्यक है।

फिर दरवाज़े पर एक और दस्तक हुई - इस बार दृढ़ और आत्मविश्वास से भरी। यह राजकुमारी बुआ थीं। गोलू के पिता के स्वर्गवास के बाद, इस घर की देखभाल उन्होंने ऐसे अपने हाथों में ले ली थी जैसे पुरानी पीढ़ी की आखिरी निशानी को संभालने का संकल्प। राजकुमारी बुआ जन्म से नेपाली थीं, लेकिन उनके अंदर वह जापानी अनुशासन था जो कस्बे के लोगों के लिए अजनबी था। इलाहाबाद के लोग उन्हें 'नेपाली होती ही ऐसी है' कहकर उनकी विशिष्टता को सामान्य बनाने का प्रयास करते, जैसे हम हर अलग व्यक्ति को किसी श्रेणी में बाँधकर उसकी विशेषता को नकारते हैं। उम्र 36-38 वर्ष के बीच, राजकुमारी बुआ ओपन रिलेशनशिप में रहती थीं - शब्द जो इस कस्बे में प्रगतिशीलता का पर्याय था, पर जिसका अर्थ कोई समझना नहीं चाहता था। गोलू के होलसेल व्यापार की सारी जिम्मेदारी

संभालती थीं और गोलू को अपना छोटा भाई मानती थीं - वो रिश्ता जो खून से नहीं, बल्कि समझ से बनता है।

इन तीनों का एक व्हाट्सएप ग्रुप था जहाँ सबसे ज़्यादा आवर्तित होने वाला संदेश था - 'पैक चली का?' - एक प्रश्न जिसमें कस्बाई जीवन की सारी थकान और उससे छुटकारा पाने की चाह समाहित थी। और फिर गोलू की छत पर वह उत्सव शुरू होता जिसमें जीवन के सारे दुःख-दर्द, सुख-चैन, झगड़े-लड़ाई, सब कुछ शामिल होते। छत - जो न सिर्फ घर का हिस्सा थी, बल्कि एक ऐसी जगह जहाँ आसमान से सीधा संवाद होता था।

आज फिर, छत पर वही तीन लोग थे - तीन अलग पीढ़ियों के प्रतिनिधि, तीन अलग विचारधाराओं के वाहक, तीन अलग स्वभावों के मालिक, पर एक ही चिंता से ग्रस्त। बीच में रखे शराब के तीन गिलास मानो तीन पीढ़ियों की मूक गवाही दे रहे थे, उस समय की जब अपनी परेशानियों को भुलाने के लिए लोग एक-दूसरे के साथ बैठ जाते थे। आज उनकी चर्चा का विषय था गुप्ता की दुकान - वो दुकान जो सिर्फ एक व्यापारिक स्थल नहीं, बल्कि गुप्ता की पहचान, उसके परिवार का इतिहास और उसके भविष्य का आधार थी।

तभी राजकुमारी बुआ ने गिलास में शराब डालते टिनटिनाते हुए पूछा, "अरे भइया, ई का मुअए जइसन मुँह बनाए बइठे हो?" उनकी आवाज़ में वही बेपरवाही लहराती थी । गुप्ता ने पुराने पंखे की तरह घरघराते हुए एक लम्बी साँस भरी, जैसे अपने अंदर का सारा डर निचोड़ कर बाहर निकालना चाहता हो और बोला, "अरे का बताईं, हमार दुकनिया अब बाढ़ की कगार पर खड़ी है। बबली भइया के लउंडे पूरी मार्केट को मुगलिया घोषित कर

दिहे हैं। किसको पता कब कउनो नया उपद्रव मच जाय। सब दुकानदार अपनी-अपनी दुकान बेचे के फिराक में लगे हैं।" उसकी आवाज़ में वही खोखलापन था जो आजकल के छोटे कस्बों में बिखरा पड़ा है - ऐसी खालीपन जो सिर्फ पैसे की तंगी से नहीं, बल्कि अपनी जड़ों के उखड़ने के डर से भी पैदा होता है।

"देखो भाई, उ मार्केट तो वैसहू ऐसी जर्जर हालत में है कि कभी भी ढह सकती है। ऐसे में दुकान का मुआवजा मिल सकता है, खरीददार नहीं।" गोलू बोला, जैसे सौदागरी की हर चाल जानता हो।

"त का करीं? बस टूट जाये दीं दुकनिया?" गुप्ता ने ऐसे पूछा जैसे किसी पुश्तैनी गहने को बेचने की बात हो रही हो।

"हाँ, जाय दो न! तुम हमरे साथे होलसेल का काम सम्हार लेना!" गोलू एक पेग गटकते और मुँह में चखना ठूँसते हुए बोला। तभी गुप्ता ने राजकुमारी की तरफ देखा और चुप्पी साध ली।

राजकुमारी तभी बीच में कूदते हुए बोलीं, "अरे तुम तो जइसे मुँह में आवे, वइसे बक देत हो! जिनके खानदान ने पीढ़ियों से मिठइयों की धरोहर सम्हाली है, उ कउनो बबली-वब्बली के डर से सब कुछ छोड़ देंगे? ई का बकवास है!" उन्होंने गोलू को ऐसे घूरा जैसे किसी लापरवाह नौकर को डाँट रही हों, फिर गुप्ता की तरफ मुड़कर कहा, "भइया आप टेंसन मत लिया करो, हम लोग दुकान बिकवाने का इंतजाम करा देंगे।"

"पर नीता कहती है नई दुकान कभी हमारी पुरानी दुकान जइसी नहीं हो सकती। हमारी मिठइयाँ सिर्फ मिठास के लिए नहीं, हमारे बाप-दादा

के नाम और उनकी दुकान की मिट्टी के लिए जानी जाती हैं।" गुप्ता की आँखों में ऐसा तनाव था जैसे ढहती दीवार के नीचे फँसा आदमी हो, जिसे कोई रास्ता नज़र न आ रहा हो।

"हूँ, बात तो ठेके की बोतल जितनी साफ़ कहत हैं भाभी," गोलू ठुड्डी खुजाते हुए बोला, "अच्छा सुनो, ज़्यादा दिमाग मत लगाओ, कछू न कछू जुगाड़ फिट कर ही देब। अभी आराम से दारू गटक लो अउर घर निकल लो—नाहीं त दीदी गुस्से में यहीं आ धमकिहैं, फिर हमका भी समझौता करावत फिरना पड़ी!"

गुप्ता के पाँव ऐसे लड़खड़ा रहे थे जैसे किसी दूसरी दुनिया से लौटे हों। शराब की गंध उनके साथ घर में घुस आई थी, जैसे कोई अनचाहा मेहमान। नीता ने उन्हें देखा तो उसकी आँखों में घृणा का पारा चढ़ गया, ऐसे जैसे वो अपने पति की नालायकियों का थर्मामीटर हो। वो चूल्हे की आग में फूँक मार रही थी, जैसे अपने गुस्से की चिंगारियाँ भड़का रही हो। दालान में पंकज और खुशबू खाना खा रहे थे, उनके चेहरों पर वो मुस्कान थी जो तूफान से पहले की खामोशी जैसी डरावनी होती है। गुप्ता ने लड़खड़ाते हुए आँगन में कदम रखा। घर में सब कुछ रुका हुआ था, बस चूल्हे की लपटें ही बेचैन थीं, जो कभी थमना नहीं जानती थीं - बिल्कुल उनकी जिंदगी की उलझनों की तरह।

"फिर आए गवा?" नीता की आवाज़ कुछ ऐसी थी, जैसे पत्थर तोड़ने वाली हो।

गुप्ता जी दीवार का सहारा लेकर बोले, "अरे, आज इतवार ह ना!"

"सोमवार ह, पापा!" पंकज ने हंसी दबाते हुए जवाब दिया।

खुशबू खिलखिलाई, "पापा, दुकान पर भीड़ नाहीं रही का?"

गुप्ता जी ने बहाना बनाते हुए कहा, "आजकल भीड़ कम होई गइल बा।"

"एह पुश्तैनी जागीर का मारे सब दिन सोमवार लगत होई," नीता बीच में बोली।

गुप्ता जी ने गर्व से छाती चौड़ी कर ली और कहा, "फोकट में नाहीं मिलल, छै अंगुरिया लेके पैदा हुए है।"

"हम त गँवार ही रहे, जो अपनी सरकारी नौकरी छोड़के तोहरे खातिर खोवा फेंटत हईं। आ तू? कउनो धंधा-पानी ना, बस रोजे पार्टी-शार्टी उड़ावत हउवा। आपन भाई लोगन से कुछ सिख ल, उ त 'छंगे' नाम के पूरा फायदा उठावत, अपने आप के असली 'छंगे हलवाई' साबित करे में लागल बा!"

"चचा त एतना कमा लिहले हउवन कि अब प्लास्टिक सर्जरी करवा के आपन दुनों हाथ में छठवाँ उँगली लगवावे के सोचत हउवन!" पंकज दाल में अचार का टुकड़ा डुबोते हुए बोला, जैसे किसी और की किस्मत पर मसाला लगा रहा हो।

"तोहसे कउन कहिस?" गुप्ता का नशा जैसे बिजली के करंट से उड़ गया। उनकी आवाज़ से लग रहा था जैसे गले में फँसी मछली की कांटा अचानक निकल गई हो।

"वकील है!" इतना कहते ही पंकज ने अपने दोनों हाथ कुर्सी के पीछे ऐसे लटका लिए, जैसे जिला कचहरी का कोई बड़ा जज हो जिसने अभी-अभी किसी मुजरिम को फांसी का हुक्म सुनाया हो।

"अरे ई का मजाक समझत हउवा का? कुछउ बकवास झाड़ देत हो!" गुप्ता की आवाज़ में एक ऐसी मिन्नत थी जैसे कोई गरीब किसान सूखे के मौसम में बादल से बारिश मांग रहा हो।

"बकवास नाहीं, सही कहत हईं!" इस बार उसने अपना एक पैर दूसरे पर ऐसे चढ़ाया, जैसे जनपद का कलेक्टर अपनी कुर्सी पर विराजमान हो। पंकज के हाव-भाव देख गुप्ता को उसकी बात का यकीन होने लगा।

"बढ़िया बा, त फेर त इनकी दुकानदारी अपनेआपै बंद होइ जाई!" नीता के मुँह से निकले ये शब्द ऐसे थे जैसे कोई जहरीला तीर छोड़ा गया हो। इतना सुनते ही गुप्ता जी का पूरा नशा कपूर की तरह उड़ गया।

गुप्ता पूरी रात सो नहीं सका। वही नींद, जो बंटवारे के बाद उनके भाइयों को भी नहीं आई थी - जैसे किसी पुराने खानदानी पेड़ की टूटी हुई शाखाएँ, जिन्हें अपने मूल से अलग कर दिया गया हो।

सच कहें तो गुप्ता हलवाई का "ह" भी नहीं जानता था, लेकिन उसके पास एक ऐसी अधकही उंगली थी, जो उसके दोनों भाइयों—कमलकांत और विमलकांत गुप्ता—के पास नहीं थी। यह रिवाज ही अजीब था—दुकान उसी को मिलती, जिसके हाथ में छह उंगलियाँ होतीं। "छंगे हलवाई एंड संस, सीन्स 1857" की पुश्तैनी दुकान और नाम की मालकियत गुप्ता को इसीलिए सौंपी गई थी। दुकान का नाम संस्कृत शब्द "षडंग" से निकला

था, जिसका मतलब होता है "छह अंग," और ये परिवार की पॉलीडैक्टिली—छह उंगलियों का संकेत था।

मिश्रीलाल के बड़का चाचा ने जब दुकान उसके हवाले कर दिही, तब से बाकी भाई-बंधुओं में ऐसी खलबली मची जैसे किसी गाँव में पानी की एकमात्र नहर किसी एक खेत में मोड़ दी गई हो। गुप्ता के चचेरा भाई कमलकांत और विमलकांत ठान लिहे कि छंगे हलवाई की नाम-पानी पर अपना अधिकार जमाना है। छंगे हलवाई इलाहाबाद की एक ऐसी पुरानी थाती थी, जो बंटवारा होने के बाद भी अपनी असली चमक और मिठास के साथे जिंदा थी। दू शाखा, दू दावा, लेकिन असली मालिकाना हक किसके गले में पड़ा था, ई तो सिर्फ पुराने इलाहाबादी ही जानते थे, जैसे कोई पुराना राज़ हो जो सिर्फ गाँव के बुजुर्ग ही जानते हों। बाहरी लोग इस बात से अनजान थे। और यह अनजानी मोह माया गुप्ता के चचेरे भाइयों के लिए दिन-दहाड़े लूट की तरह वरदान बन गई थी।

सर्राफा रोड पर उनकी दुकान के ऊपर एक बड़ा-सा बोर्ड ऐसे लटकाया था, जैसे कोई दूसरा राजा किसी किला को फतह करके अपना झंडा गाड़ देता है। बोर्ड पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा था—" ओरिजिनल छंगे हलवाई - सन् 1857 से।" सर्राफा रोड, जो इलाहाबाद का सबसे चकाचौंध बाजार था।

सबसे छोटका भाई कमलकांत, जो मिठाइयों के रंगों का ऐसा जादूगर था जैसे कोई चित्रकार अपने कैनवस पर जादू बिखेरता हो, हर मिठाई को इतना गाढ़ा और चमचमाता बनाता, मानो देवलोक की कोई अमृत-मिठाई हो। "काली जलेबी - 1857 की विरासत," "चाँद गुलाब जामुन - 19वीं सदी

का जायका" जैसे नाम रखते थे और लोग लपक-लपक कर ऐसे खरीदते जैसे कोई सस्ते में हीरा मिल रहा हो। हालत यह हो गई थी कि अगर कोई परदेसी आदमी इलाहाबाद आता, तो रेलवे स्टेशन से सीधा उन्हीं की दुकान पर पहुँचता।

जैसे बनारस में बाहरी लोगन के वास्ते असली पहलवान लस्सी वाला ढूँढ़ना और कानपुर में असली पंडित जी की चाट की ठेली पकड़ना सियार के सींग के बराबर मुश्किल था, वइसे ही इलाहाबाद में असली छंगे हलवाई की पहचान कौनो अनजान के बस का रोग नहीं था।

गुप्ता, अपनी पुरानी खस्ताहाल दुकान के साथ, इस पूरे तमाशे को ऐसे देखता था, जैसे कोई बूढ़ा बरगद अपने ही जड़ों पर उगते नए-नवेले पौधों को घूरता है, जो उसकी ही जड़ों को चूसकर फूल-फल रहे हों। उसकी आँखों में एक ऐसी बेबसी थी जैसे कोई किसान अपनी फसल को टिड्डियों द्वारा चट किए जाने का मूकदर्शक बना हो। उस रात गुप्ता की आँखें इन्हीं सब बातों की चिंता में ऐसे जागती रहीं जैसे कोई चोरी हुई चीज की रखवाली करता हो।

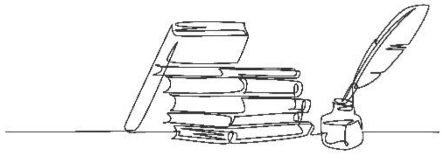

# पीपल का पेड़

अगली सुबह, मिश्रीलाल गुप्ता अपने उड़े हुए मुँह और मनहूस चेहरे के साथ चुंगी बाजार की ओर बढ़े। आँखों के नीचे काले गड्ढे बन गए थे। वे ऐसे चल रहे थे जैसे कोई फटेहाल किसान अपनी अंतिम उम्मीद लेकर साहूकार के दरवाजे की तरफ बढ़ता हो। कई दिनों के घने कोहरे के बाद, आसमान ने तेज धूप को अपने भीतर समेट लिया था। मौसम की इस बेमिसाल तब्दीली ने गुप्ता के मनोदशा पर भी गहरा असर डाला था। गली के आखिरी छोर पर, जहाँ से चौड़ी सड़क की साफ-साफ झलक मिलती थी, एक पुराना दो मंजिला मकान खड़ा था, जिसके ऊपर " ओरिजिनल छंगे हलवाई - सीन्स 1857" का बोर्ड टंगा हुआ था। गुप्ता का चचेरा भाई कमलकांत दुकान का शटर खोल रहा था। तभी उसने देखा कि एक आदमी उसकी ओर बढ़ रहा है। कुछ कदमों की दूरी पर आने पर कमल कांत ने उसे ध्यान से देखा। वो शख्स बिल्कुल मिश्रीलाल जैसा दिख रहा था। लंबी बुशर्ट की ढीली आस्तीनें कंधों तक चढ़ी हुई थी और बड़ी-बड़ी आंखों में काजल लगा हुआ था। पहली नजर में वो किसी मजार का मुजावर लग

रहा था, लेकिन जैसे ही वो सड़क पार करने लगा, कमलकांत समझ गया कि ये मिश्रीलाल ही है। मिश्रीलाल खुद से बातें करता हुआ कमल कांत की ओर बढ़ रहा था। कमल कांत ने भी अपनी कमीज की आस्तीनें ऊपर समेट ली थीं। गुप्ता ने पास पहुँचते ही कमल कांत का हाथ पकड़ लिया और कहा, "ई सुने हन कि भगवान ब्रह्मा जी खुद धरती पे आके तोहके छठवीं उंगली का वरदान दिहिन हैं।"

ये सुनते ही कमल कांत ने झटके से अपना हाथ छुड़ा लिया और तमतमाते हुए बोला, "नाही उतरे तो उतरे खातिर भी तैयार होइ जाइहें। जाओ, इहाँ ड्रामा मत पेलव।" इतना सुनते ही गुप्ता का पारा चढ़ गया और वो दाँत पीसता हुआ बोला, "बेटा, ड्रामा त अदालत मा होई।"

थोड़ी ही देर में आस-पास के दुकानदार भी ये तमाशा देखने के लिए जमा हो गए। सड़क पर जाम लगने लगा। बड़े भाई विमलकांत के आने के बाद किसी तरह मामला शांत हुआ। जाते-जाते गुप्ता इतना कह गया, "भगवान हमका छः उँगलियन दिहिन हैं, त हम का करीं? देख लेहब, कहीं तोह लोगन की उँगलियन बचिही ना।" ये कहता हुआ वो भीड़ को चीरता हुआ वहाँ से निकल गया। धीरे-धीरे भीड़ का जमावड़ा कम हो गया और लोग अपने-अपने काम में लग गए। उस दिन कमलकांत और विमलकांत ने अपनी दुकान का शटर बंद ही रखा।

गुप्ता जब भी परेशान होता, गंगा के घाट पर जाकर बैठ जाता, जहाँ पानी की लहरें उसकी चिंताओं को लीलने की कोशिश करतीं। यही वह घाट था, जहाँ उसके पूर्वजों ने सदियों पहले कुम्भ के दौरान पहली बार अपनी दुकान खोली थी। मिश्रीलाल के पूर्वज कभी मुग़ल दरबार के लिए

मिठाइयां बनाते थे। उनकी एक खास मिठाई, 'गुलाब-ए-हिंद', बादशाह को इतनी भायी थी कि उसे एक सोने का तावीज़ दिया गया था—वही तावीज़ अब उसके गले में लटका था। गुप्ता ने अपने छह उंगलियों वाले हाथ को देखा और मन में एक गहरी आह भरी। उसे यह भली-भांति पता था कि पुश्तैनी मिठाइयों का कोई राज उसके पास नहीं है; वह तो बस उस नाम के सहारे मिठाइयां बना रहा था, जबकि असली रेसिपी उसके चचेरे भाइयों के पास थी। कई बार उसके मन में आया कि वसीयत उन्हें सौंप दे और किसी और धंधे की तलाश में निकल पड़े, लेकिन अब वह इस विचार से बहुत दूर जा चुका था। परिवार की जिम्मेदारी, बच्चों की पढ़ाई—इन सबने उसकी जिंदगी की कठोर सच्चाई को और भी भयानक बना दिया था।

गुप्ता रोज की तरह दुकान पर पहुँचा, लेकिन आज कुछ अजीब था। दीवार पर लाल रंग से मोटे अक्षरों में लिखा था—"मुगलों की बनी इस इमारत की अब कोई जरूरत नहीं।" उसने एक पल को पढ़ा, जैसे किसी कटघरे में खड़ा हो और फैसले का इंतजार कर रहा हो। फिर लंबी सांस ली, बाल्टी में पानी भरा और धीरे-धीरे उसे धोने लगा। वह जानता था, यह सिर्फ दीवार पर लिखी कोई लाइन नहीं थी। यह उस शहर की कहानी थी, जहाँ नफरत की आग हर रोज़ बबली भैया जैसे नेताओं की बातों से और भड़कती जा रही थी।

गुप्ता के हाथ दीवार पर घूम रहे थे, लेकिन उसका दिमाग कहीं और भागा जा रहा था। यह दीवार उसकी दुकान की थी, लेकिन उस पर जो लिखा था, वह पूरे शहर पर भारी था। बबली भैया, जिनका काम गंदगी

फैलाना और धर्म का मसाला लगाकर उसे परोसना था, इस शहर की नसों में जहर की तरह उतर चुके थे।

उसने पानी के छींटों के साथ अपने भीतर उबलते गुस्से को शांत करने की कोशिश की, लेकिन दीवार की वह लाल लिखावट उसकी आँखों से नहीं उतर रही थी। जैसे एक घनी अंधेरी छांव उसके भीतर तारी हो गई हो। उसने जल्दी से गोलू को फोन लगाया, जैसे अपनी झुंझलाहट को किसी भरोसेमंद कंधे पर डालना चाहता हो। फोन की घंटी बजती रही, और गुप्ता सोचता रहा कि दीवारों पर लिखने वाले लोग आखिर मन में किस दीवार को बनाए रखते हैं, जो इतनी घृणा से लकीरें खींचते हैं?

गोलू ने फोन उठाया।

"हाँ भईया, बोल।" गोलू की आवाज़ में थका हुआ सा लहजा था, जैसे एक और दिन की शुरुआत का बोझ कंधे पर हो।

"अरे, कहाँ बा? दुकान का मामला तो गड़बड़ हो गवा है। जल्दी आवा।" गुप्ता की आवाज़ में बेचैनी थी, जैसे सब कुछ अचानक तेज़ी से हाथ से निकलता जा रहा हो।

गोलू ने गहरी सांस ली, "भईया, सुबह-सुबह काहे परेशान करत हउवा? चाय तौ पी लेवे द।" गोलू ने जवाब में गुस्से से भरी आह भरी।

"चइया छोड़, जल्दी हियाँ आवा।" गुप्ता बेचारा हाँफते-हाँफते बोला, जइसे कि दुनिया में आग लगी हो और सिर्फ उसके पास ही पानी का लोटा हो। और फिर? और फिर का... गोलू जी आधा घंटा बाद आए, राजकुमार जइसे।

"अब बतावा, का मामिला बा? काहे इतना तड़पत रहे?" गोलू ने गुप्ता के मुँह पर छाए बादलों को देखकर पूछा। गुप्ता चुपचाप दीवार की ओर उँगली उठाई, मानो वहाँ कोई खज़ाने का नक्शा हो—पर था सिर्फ पान की लाल-लाल पीकें और ऐसी गालियाँ जो शब्दकोश में नहीं मिलतीं। फिर दोनों समोसे-कचौरी की दुकान पर जा टिके, जैसे दुनिया के सारे फैसले वहीं होते हों।

"तोहका मालूम बा की इही दुकान से पूरा बाजार चलत बा? हर ठेलिया-दुकानदार के चइया इहीं से जात बा, दिनू-दोपहरिया। अब लगत बा की सब चौपट होइ जाई।" गुप्ता अपनी बात कहते-कहते आसपास के दुकानदारों को ऐसे हाथ हिला के सलाम कर रहा था, जैसे आखिरी सलाम हो।

"दुकनिया अब बेंचे के पड़ी, जल्दी से जल्दी।" गुप्ता धीरे-धीरे पूरा किस्सा बताने लगा, उसकी आँखों में ऐसी चिंता थी जैसे गंगा-जमुना दोनों सूख गई हों।

गोलू ने समोसे का आखिरी टुकड़ा अपने मुँह में ऐसे फाँका जैसे कि ये आखिरी समोसा हो धरती पर, और आँखें ऐसे फैलाईं जैसे परदे खुलने वाले हों। "अरे गुप्ता भइया, तोहरा मालूमो नाहीं? ई इमारत के मुगलिया घोषित कर दिहल गवा है। अफवाह बहुत तेज बा कि सरकरिया लोग एकरा अपना बना लेंगे।" गोलू ने इतनी तेज़ी से बोला कि एक साँस में पूरी बात खतम हो गई, जैसे बस अभी निकलने वाली हो।

गुप्ता के चेहरे पर ज़रा भी हैरानी नहीं थी—मानो उसने इस दौर की खबरें अख़बारों से नहीं, दीवारों की दरारों से पढ़ रखी हों। उसकी नज़र एक क्षण को शून्य में अटकी, फिर जैसे भीतर से कोई जर्जर सच्चाई बाहर झाँकने लगी।

"ई देश की राजनीति सब कुछ चबा गई," उसने कहा, आवाज़ में थकान नहीं, इतिहास था,

"अब जब कुछ नहीं बचा... तो इंसानी मांस की भूख लगने लगी है उसे।" उसकी बात में कोई उत्तेजना नहीं थी, सिर्फ़ वही भारीपन था जो तब आता है, जब कोई सपना टूटता है—और उसके नाम पर कोई क्लेम भी न लिखा हो।

गोलू ने सिर हिलाया, "कुछऊ ना, बस अब जल्दी करे के पड़ी, जो भी करना है।" और फिर बोला, जैसे कि उसके पास सारी दुनिया की समझदारी हो। "देखा भइया, दुकान त अब ना बिकी। एगो उपाय बा, पहिले माल रोड वाली दुकनिया देखी लेई, नाहीं त ऊहो चिरई उड़ जाई हाथ से। इहाँ वाली दुकान के बारे में बादे में सोची। अभी नई दुकान खोले के पइसा जुटावे के ताकत लगावा।"

गुप्ता का सिर ऐसे घूमने लगा जैसे मेले में हिंडोला। "पइसा जुटाए के मतलब का हुआ?"

गोलू ऐसे मुस्कुराया जैसे उसके पास भगवान का नंबर हो। "अरे, हम मदद करी सकित बानी, दस लाख तक। बाकी के पइसा लोन से आ जाई, काहे फिकर करत बाड़ी?"

गुप्ता ने ऐसी राहत की साँस ली जैसे जेल से रिहा हुआ हो। चाय का पहिला घूँट भरा और गोलू को ऐसे देखा जैसे वो कोई जादूगर हो। "लोन ले लेब, पर बैंकिया लोग मानी के?" गोलू ने ऐसे हाथ हिलाया जैसे मक्खी उड़ा रहा हो। "हम्म, बैंकवा के मनाए में का बा? बस थोड़ा काग़ज-पत्तर ठीक होखे के चाही।" गोलू ने ऐसे आश्वासन दिया जैसे उसने बैंक खरीद रखा हो। "चलो, पहिले बैंके चलत हईं, देखत हईं कवन चारा बा।"

प्रयागराज का सेंट्रल बैंक हमेशा की तरह भीड़ में डूबा था। गुप्ता और गोलू अंदर घुसे ही थे कि गार्ड ने पहचान लिया।

“अरे, गुप्ता बाबू! का हो, आज इहां?” गुप्ता ने हल्की मुस्कान फेंकी और अपनी पुश्तैनी आव भाव में अंदर घुसे। घुसते भी क्यों न? वो किसी सेलिब्रिटी से कम थे क्या प्रयागराज के लिए। दोनों सीधे मैनेजर के केबिन में। मैनेजर फाइलों में गुम, मगर निगाह उठी तो दोनों को देख ठहर गई।

“हाँ, गुप्ता जी, बोलिए।” अब तो गुप्ता जी की छाती फूल के फ्लाईओवर बन गयी। चपरासी से लेकर मैनेजर तक कौन नहीं जानता उन्हें। गुप्ता ने अपनी बात ठोक-पीट कर रखी। “दुकान खातिर लोन चाही। सब तैयारी कर लिहे हैं, अब बस आपके मोहर का इंतजार बा।” मैनेजर ने फाइल बंद की, जैसे पहले से जवाब लिख रखा हो। “देखिए, बिना गारंटी लोन मुश्किल है।”

गुप्ता का चेहरा ऐसा गिरा जैसे किसी ने कंधे से लाठी छीन ली हो, और वह पूरी तरह से हताश हो गया। उसकी आँखों में एक ऐसी बुझी हुई उम्मीद थी, जैसे हर रास्ता बंद हो गया हो। गोलू ने तुरंत स्थिति को संभाला। "अरे

साहेब, गुप्ता जी पर भरोसा करिए। इनके बनाये प्रसाद से तो हनुमान जी प्रसन्न होते हैं। हनुमान जी के खातिर ही कुछ करिए, मैनेजर साहब।" गोलू ने एक चुटकी में बात को हल्का करने की कोशिश की।

मैनेजर ने माथा खुजलाते हुए सोचा, फिर एक रास्ता सुझाया, "एक रास्ता है। घर के कागज़ात गिरवी रख दें तो काम बन सकता है।"

गुप्ता के दिल पर मानो भारी गदा पटक दी गयी हो। उसकी आँखें सुन्न हो गईं और वह शून्य में खो गया। उसने गोलू की तरफ देखा, जो चाय के कप के किनारे घुमा रहा था।

धीरे से, गुप्ता ने पूछा, "घर गिरवी? नीता का कहेगी?" उसकी आवाज़ में चिंता थी, जैसे उसने एक ऐसा रास्ता देखा हो, जो उसे पूरी तरह से घर से बाहर कर दे।

गोलू ने चाय रखी, गुप्ता की आँखों में सीधे झांका। “भइया, छंगे हलवाई की दुकान बचानी बा त दांव खेलना पड़ी। घर छोड़ो या सपना!”

बाहर बैंक का शोर जस का तस था, पर गुप्ता के अंदर फैसला लेने की आँधी उठ चुकी थी। बैंक से बाहर निकलते ही गुप्ता के माथे पर चिंता की लकीरें और गहरी हो गईं। "गोलू, ई सब ठीके नाहीं लागत। नीता के पता चल गईल त उ हमके घर से बाहर क देई।"

गोलू ने ठहाका लगाया। "अरे भइया, उ तो अइसन वैसे भी हर रोज घर से निकाले के धमकी देत रही। लेकिन देख, हम तोहार से एक वादा करत हई। जब तक दुकान के एक-एक किस्त ना चुकता होई, घर गिरवी वाली बात केहू के पता ना चली।"

गुप्ता जी ने ऐसी लंबी साँस ली जैसे पिछले तीन जन्मों की थकान एक साथ निकाल रहे हों। उनके माथे पर चिंता की तीन लकीरें ऐसे उभरी थीं जैसे किसी ने मैदान पर हल चला दिया हो। "ठीक बा, लेकिन ई बात बस राजे रहना चाहीं।"

गोलू ने अपनी मुँछों को ऐसे मरोड़ा जैसे वो फिल्मी डॉन हो, और मजाकिया अंदाज में बोला, "भइया, हम राज के राजमहल मा दफ़न कर देब, लेकिन बाहर जाए ना देब।"

और तभी जैसे आसमान से बिजली गिरी हो, उनकी नज़र बिगालर भाभी पर पड़ी। गुप्ता जी फटाफट अपनी लूना के पास पहुंचे और जैसे ही अपनी नीली लूना पर सवार हुए, तो आवाज़ ऐसी निकली जैसे किसी बुढ़ऊ भैंस ने कराहते हुए नाँद से मुँह हटाया हो।

“अबे लूना, तू रोज़ का नया ड्रामा क्यों करती है?”

गुप्ता जी ने पेट्रोल टंकी थपथपाई, फिर एक झन्नाटेदार किक मारी।

लूना थोड़ी हिली, पर बोली नहीं। फिर दूसरी किक। इस बार जैसे उसकी आत्मा झटके में जागी हो। फिर गुप्ता जी ने उसे ऐसा भगाया जैसे मंगल ग्रह पर पहुँचना हो। वो अच्छी तरह जानते थे कि अगर वो गलती से भी उनके कैमरे के सामने आ गए तो उनका जीवन-चरित्र सोशल मीडिया पर ऐसे फैल जाएगा जैसे कोई महामारी।

बिलागर भाभी वहीं बैंक के बाहर, समोसे वाले से जिंदगी के फलसफे पर बहस कर रही थीं। उनके हाथ में समोसा था और मुँह में शब्दों का अनवरत प्रवाह। समोसे के ठेले वाले को वो पुश्तैनी बता रही थीं और फूड

ब्लॉगिंग करने में इतनी व्यस्त थीं जैसे देश का अगला बजट उनके हाथ में हो।

जब से उसने नीता टिफिन सर्विस का ऐलान किया था, तब से नीता का जीना दूभर हो गया था।

लूना की पिछली सीट पर बैठा गोलू, अपने दोस्त के चेहरे पर चिपकी चिंता को देख रहा था। वह चिंता ऐसे चिपकी थी जैसे सरकारी दफ्तर में लगी फाइलों की धूल।

"अबे यार, इतनी फिकर काहे करत हौ? कछु गड़बड़ होइ जाए तौ हमार पइसा मत दिहौ। वैसे भी हमरे आगे-पीछे कौन बा?"

गोलू की आवाज़ में सच्चाई थी और उस सच्चाई में खरास भी, जैसे पुराने कुएँ का पानी - मीठा भी और थोड़ा खारा भी।

गुप्ता जी ने लूना को झटके से साइड में रोक दिया। अपनी पुरानी मगर फुर्तीली कलाई उठाकर गोलू के कान के नीचे एक थप्पड़ टिका दिया। कलाई पुरानी थी लेकिन अनुभव नया नहीं था।

"अबे, हम का मरि गए हैं का?" गुप्ता की आवाज़ में गुस्सा था और गुस्से के पीछे अपने अस्तित्व की चिंता। धूल खाती लूना और उसके ऊपर बैठे दो विभिन्न उम्र के दोस्त। एक जिसके पास सारी चिंताएँ थीं और दूसरा जिसके पास सारे समाधान।

गोलू मुँह फिराते हुए बोला, "तू खुदे इतना टेंशन लिहे बैठा हउआ, अउर हमका ज्ञान देत हौ!"

शहर की गर्मी में लूना पर बैठे दो आदमियों की कहानी इससे ज्यादा शास्त्रीय नहीं हो सकती थी।

गुप्ता लूना को साइड स्टैंड में टिकाते हुए, उस गंभीरता से बोला जिसे स्कूल के प्रिंसिपल भी तरस जाएँ।

"सारी टेंशन का जड़ वो पीपल का पेड़ है और उ त्रिकोण भुज, हम सोचत हईं कि आंगन मा जो पीपल क पेड़ बा, उहे कटवा दीं और लोन के कुछ पैसन से उ त्रिकोण क चौकोंन बना देइ।"

अंधविश्वास और जिओमेट्री का यह अनोखा मिश्रण सिर्फ इलाहाबाद में ही संभव था। यहाँ पीपल के पेड़ और त्रिकोण एक साथ जीवन की समस्याएँ बन सकते थे।

गोलू ने अपने कंधे उचकाए। उसके कंधों का उचकना शब्दकोश में दर्ज सारे प्रश्नवाचक चिन्हों से अधिक सवाल पूछ रहा था।

"तो ई मा इतना सोचइ के का बात है?"

गुप्ता ने एक सेकंड की देरी बिना पुनः कहा, जैसे यह वाक्य उसने बचपन से रटा हो - "सोचइ के का बात ई है कि पीपल के पेड़ काटब बहुत अफसगुण का काम है।"

और फिर वह वाक्य आया जिसमें धर्म, भूगोल और व्यावहारिकता का त्रिवेणी संगम था।

"सोचत हईं कि रफीक से कटवा दें। उनका धरम मा पीपल काटे पाप नाहीं बा।"

गोलू ने इस समाधान को सुना। उसकी आँखों में थोड़ी हैरानी थी, थोड़ी मुस्कान थी, और बहुत सारी समझ थी। इलाहाबाद के अंधविश्वास को दूसरे धर्म के कंधों पर डालने का यह प्रयास नया नहीं था।

"जैसन तोहरे मनवा के चैन मिले, वइसै करि ल। चलो हम यही से गोदाम की तरफ निकल जाते हैं।"

और गोलू हाई कोर्ट रोड की तरफ निकल गया। पीछे छूट गया गुप्ता, उसका लूना, पीपल का पेड़ और एक त्रिकोण जिसे चौकोर बनना था। शायद जीवन भी ऐसा ही होता है - कुछ कोनों को हम कभी नहीं मिटा पाते।

शाम होते-होते रफीक को बुला लिया गया। वह एक ऐसे मिशन पर आया था जिसमें धर्म का आधार, संस्कृति का सम्मान और आठ सौ रुपये की दिहाड़ी शामिल थी। गमछे को कंधे पर लटकाए, कुल्हाड़ी थामे रफीक ऐसे चल रहा था जैसे युद्ध के मैदान में उतर रहा हो - एक ऐसा युद्ध जिसमें एक तरफ पीपल का पेड़ था और दूसरी तरफ गुप्ता जी का अंधविश्वास।

नीता छत से झांकते हुए पूछ बैठी, "तू सोच लिहे हउआ?"

यह सवाल था या चेतावनी, यह समझ पाना रफीक के लिए भी उतना ही मुश्किल था जितना गुप्ता जी के लिए बजट बनाना।

"हां, अब त कटवावे के परी। सब कहत हैं कि पीपल क साया घर खातिर अच्छा नाहीं होई।" गुप्ता जी की आवाज में एक अजीब सा विश्वास था। वही विश्वास जो सरकारी नौकरी के फॉर्म भरते वक्त होता है - पता है कि होगा नहीं, फिर भी भर देते हैं।

नीता ने कुछ कहने के लिए होंठ खोले, फिर बंद कर लिए। शादी के बीस साल में उसने सीख लिया था कि कुछ लड़ाइयां जीती नहीं जाती, खासकर वो जिनमें पति का अंधविश्वास शामिल हो।

रफीक ने कुल्हाड़ी उठाई और पहले ही वार में मोटी डाली को धराशायी कर दिया। पीपल की डाली के गिरने की आवाज़ से मोहल्ले के कुत्ते भौंकने लगे और तभी मोहल्ले के लोगों का हुजूम इकट्ठा हो गया - जैसे किसी फिल्म का क्लाइमैक्स देखने।

"अरे ई का हो रहा है? पीपल काटना महापाप है!" शर्मा जी, जो पिछले तीस सालों से कभी मंदिर नहीं गए थे, अचानक धर्म के रक्षक बन गए। उनकी आवाज़ में ऐसा दर्द था जैसे उनका अपना पेड़ कट रहा हो।

"शर्मा जी, आप तो वही हैं न जो अपने बगीचे के हर पेड़ को काट के प्लॉट बना दिए?" रैंडम दुबे जी ने चश्मे को ऊपर करते हुए कहा। दुबे जी, जिन्होंने अपनी ज़िंदगी में कभी कोई किताब पूरी नहीं पढ़ी थी, पर हर विषय के विशेषज्ञ थे।

"वो अलग बात है! वो आम के पेड़ थे, पीपल नहीं!" शर्मा जी ने जवाब दिया, जैसे पेड़ों की जाति व्यवस्था का पाठ पढ़ा रहे हों।

"पीपल तो शिव जी का पेड़ है, बाबू! इसको काटने से घर में अमंगल होगा!" मइयादीन मिश्रा जी, जो मोहल्ले के सबसे बुज़ुर्ग और सबसे अधिक निठल्ले थे, ज्ञान बघारने लगे। मइयादीन अपनी धर्मपत्नी यानी कि बिलागर भाभी से दो गुने उम्र के थे इसीलिए घर में उनकी एक न चलती थी। तो हरवक्त दुआर में खड़े रहते और आते जाते लोगों से ज्ञान पेलते

रहते। जबसे बिलागर भाभी ने स्लीवलेस मैक्सी का अवतार धारण किया था तब से मइयादीन की अइया - मइया हो रखी थी।

"लेकिन घर के अंदर पीपल रखना तो अशुभ माना गया है!"ये आवाज़ त्रिपाठी जी की थी—रिटायर्ड मास्साब,

गुप्ता जी के मकान से पीछे की ओर तीसरे घर में रहते थे।उनका मकान अब ज़्यादा 'बॉयज़ हॉस्टल' था, कम 'घर'।पड़ोस में किराए से आए नाम-पता रहित लड़कों की आवाज़ें दिन भर वहां गूंजती थीं—और त्रिपाठी जी, हर शाम चाय के कप के साथ एक ताज़ा आपत्ति खोज लाते थे।विरोध उनका पुराना संस्कार था—कभी पाठ्यक्रम से, कभी पड़ोसी से, कभी पेड़-पौधों से।इस बार निशाना पीपल था—जिसकी जड़ें घर के आंगन में नहीं, त्रिपाठी जी की धारणा में उलझ गई थीं। गुप्ता जी को पीपल काटने की सलाह इन्ही महोदय ने दी थी।

बहस तेज़ होती गई। मोहल्ले के दो गुट बन गए - पीपल बचाओ गुट और पीपल हटाओ गुट। दोनों के बीच शास्त्रों के हवाले, पुराणों की कहानियां और अपनी-अपनी दादी के किस्से उड़ने लगे। वातावरण इतना गरम हो गया था कि नीता की चाय ठंडी होने का नाम ही नहीं ले रही थी।

और इस सबके बीच बिलागर भाभी - मोहल्ले की आधुनिक नारी, अपने स्मार्टफोन की लाइव स्ट्रीमिंग से पूरे हिंदुस्तान को यह तमाशा दिखा रही थीं।

"हेलो फ्रेंड्स! आज हम लाइव हैं गुप्ता जी के घर से, जहां धर्म और विज्ञान की लड़ाई चल रही है!" बिलागर भाभी ऐसे बोल रही थीं जैसे वह

कोई राष्ट्रीय युद्ध का प्रसारण कर रही हों। उनके हाथ में फोन था और चेहरे पर वही मुस्कान जो ट्रैफिक जाम में भी नहीं जाती थी।

"जैसा कि आप देख सकते हैं, यहां दो विचारधाराएं टकरा रही हैं! एक तरफ परंपरा है, दूसरी तरफ आधुनिकता! एक तरफ अंधविश्वास है, दूसरी तरफ अज्ञान! और बीच में है यह बेचारा पीपल का पेड़, जो शायद अपनी आत्मकथा लिख रहा होगा - 'मैं और मेरा अभिशप्त जीवन'!"

बिलागर भाभी के फॉलोअर्स कमेंट्स की बौछार कर रहे थे - "पीपल बचाओ!", "अंधविश्वास हटाओ!", "गुप्ता जी पागल हैं क्या?" और "बिलागर भाभी आप कितने रुपये लेती हैं एक विज्ञापन के?"

"फ्रेंड्स, अगर आपको यह लाइव पसंद आ रहा है तो लाइक और शेयर करना न भूलें! और हां, मेरे नए अमेज़न अफिलिएट लिंक पर क्लिक करके पीपल की पूजा सामग्री भी ऑर्डर कर सकते हैं! 20% डिस्काउंट कोड है - GUPTA20!" बिलागर भाभी ने मार्केटिंग का मास्टरस्ट्रोक खेलते हुए कहा।

तभी शर्मा जी और त्रिपाठी जी की बहस हाथापाई के करीब पहुंच गई। एक का कहना था कि पीपल में देवता बसते हैं, दूसरे का कहना था कि घर के अंदर के पीपल में भूत-प्रेत बसते हैं।

"देवता हैं!" "भूत हैं!" "देवता हैं!!" "भूत हैं!!"

और इस बीच बिलागर भाभी चिल्लाईं - "फ्रेंड्स! अभी-अभी हमारे लाइव पर 10,000 व्यूज हो गए हैं! आप सभी को धन्यवाद! और बताइए - पीपल काटना सही है या गलत? कमेंट बॉक्स में बताएं!"

नीता चाय पर चाय की खेप ला रही थी, पर इस बार हर कप के साथ एक नया निशाना भी था - कभी शर्मा जी के हाथ में, कभी त्रिपाठी जी के, और हां, बिलागर भाभी के स्मार्टफोन पर भी एक "गर्म" चाय की बूंद गिरी। "ओह! सॉरी भाभी, हाथ फिसल गया," नीता ने मासूमियत से कहा।

"पापा के त हर चीज मा टेंशन होई।" खुशबू ने हल्की सी हंसी के साथ कहा। उसकी आवाज़ में वह प्यार था जो पिता की कमजोरियों को समझता है।

"अब ई भी कहिहैं कि पीपल काटे से घर के हालात सुधरि जइहैं।" आलोक ने मजाक में जोड़ा। वो जानता था कि उसके पिता का अंधविश्वास और उनकी चिंताएँ, दोनों घर के खर्च से ज्यादा थीं।

गुप्ता जी ने बच्चों की तरफ देखा। उनकी आंखें ऐसे तरेरीं जैसे वे दुनिया के सारे ज्ञान के एकमात्र वारिस हों। "ई तोहरे पंचन के समझे क बात नाहीं हौ।"

"पिता जी भूल गवा का, वकालत पढ़त हईं। तोहरे भगवान क केस भी हमही लोग लड़त हईं।" आलोक ऐंठते हुए बोला।

आलोक के इतना कहते ही आँगन में जमे मुहल्ले के अंकिलों के मुंह से "ओह!" की आवाज़ निकली, जैसे किसी क्रिकेट मैच में सिक्सर लगा हो। मोहल्ले की बहस अब धर्म से कानून में प्रवेश कर गई थी।

"ई नई पीढ़ी न तो धरम जानत है, न करम! बस मोबाइल चलावत रहे हैं!" मइयादीन मिश्रा जी ने अपने बेटे की ओर इशारा करते हुए कहा, जो

आलोक के पीछे खड़ा होकर चुपके से यह सब Tik Tok पर रिकॉर्ड कर रहा था।

“हाँ हाँ, अउर आप लोग तो गीता के पंडित हैं! हर शाम ताश खेलते समय बड़े याद करते हैं भगवान को!” त्रिपाठी मास्साब के बेटे (शिवम) ने खीझकर कहा, आँखों में वो तिरछी चमक थी जो अक्सर मोहल्ले के अधकचरे आशिकों में होती है। बी.ए. का छात्र था, पर खुद को वकीलों की बहस और नेताओं की चालों से ऊपर मानता था। गुप्ता जी की बेटी से उसका एकतरफा मोह मोहल्ले भर को पता था, सिवाय गुप्ता जी के बेटी के। किरायेदार इनवर्सिटी के लड़कों से हिसाब में हेरफेर कर जो पैसे बचाता, उसी से गली-मुहल्ले में चाय पिलाकर खुद को नायक साबित करता फिरता। उधर त्रिपाठी मास्साब ने जैसे बेटे की बेरोज़गारी से नज़र फेरने के लिए पहले ही दहेज की माँग मोहल्ले में उछालनी शुरू कर दी थी—जैसे किसी परीक्षा से पहले मिठाई बाँटी जाती हो

इस बीच पेड़ कट गया। रफीक ने कुल्हाड़ी कंधे पर टिकाई, जैसे किसी महान मिशन से लौटा हो। "होइ गवा काम, गुप्ता जी।"

सभी की नज़रें पीपल के गिरे हुए तने पर गईं। एक लंबी खामोशी छा गई, जैसे किसी अपने के अंतिम संस्कार पर होती है।

शर्मा जी ने आहें भरीं - "ई पाप क फल भुगतिहौ, गुप्ता बाबू!" त्रिपाठी जी मुस्कुराए - "अब टेंशन से छुटकारा मिली!" मिश्रा जी बुदबुदाए - "रफीक भाई, तोहरे धरम में इसका क्या कहत हैं?"

रफीक ने बस मुस्कुरा दिया। वो जानता था कि धर्म और अंधविश्वास की बहस में सबसे बुद्धिमान वही है जो चुप रहे।

बिलागर भाभी अपनी लाइव स्ट्रीमिंग का समापन कर रही थीं - "फ्रेंड्स! आज हमने देखा कि कैसे एक पीपल का पेड़ पूरे मोहल्ले को आपस में लड़ा सकता है! नेक्स्ट वीक हम लाइव आएंगे त्रिपाठी जी के घर से, जहां उनकी बहू और सास के बीच रसोई के अधिकार की लड़ाई चल रही है! तब तक के लिए... लाइक, शेयर और सब्सक्राइब करना न भूलें!"

पीपल का पेड़ गिर चुका था। गुप्ता जी के चेहरे पर विजय का भाव था। लेकिन क्या यह विजय थी या नई समस्याओं की शुरुआत, यह तो समय ही बताएगा। शायद अगली बार त्रिकोण के चौकोर होने पर सारी समस्याएँ हल हो जाएंगी, या फिर नहीं।

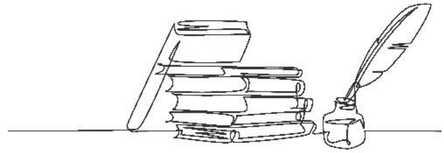

# नयाभेष

एक महीने की भाग-दौड़, चाय की दुकानों पर योजनाएं, गोलू मिश्रा की सिफ़ारिशें बाद, गुप्ता ने आखिरकार अपनी नई दुकान खोल ही ली, गुप्ता स्वीट्स —वहीं, जहां मिठाई और सोना-चांदी एक ही भाव में तौले जाते हैं।

सर्राफा गली।

जहां दाम पूछने से पहले आदमी की औकात देखी जाती है।

जहां हर मुस्कान के पीछे हिसाब छुपा होता है, और हर मिठाई के नीचे खर्चे का वजन।

गुप्ता जी ने यही जगह चुनी।

उनकी आँखों में सपनों का टूटा पलस्तर था और उम्मीदों का सीमेंट।

घर के कागज़ गिरवी थे, तीस लाख का कर्ज़ हवा में उड़ रहा था और नीता को इस पूरे 'स्टंट' की हवा तक नहीं लगने दी गई थी—क्योंकि एक गुप्ता पुरुष जितना व्यापार में रिस्क ले सकता है, उतना बहस में नहीं।

गुप्ता और गोलू ने इसे ऐसे छुपाया जैसे किसान बोरिंग के पीछे अपनी आख़िरी बचत गाड़ देता है।

हर सुबह, गुप्ता जी अपनी बूढ़ी, कराहती हुई नीली लूना पर मिठाइयां लादते, और वही पुरानी दुकान की ओर निकल पड़ते—मानो कुछ बदला ही न हो।

उस दिन भी वैसा ही किया।

कलुवा, जो अब भी अपने बाएँ कान के ऊपर लाल रूमाल बाँधता है (क्योंकि उसे लगता है इससे वो कूल दिखता है), दुकान के पीछे लकड़ी की तख़्त पर बैठा था।

गुप्ता जी ने मिठाइयों की टोकरी उतारी, जैसे कोई राजा अंतिम बार अपना राजपाठ सौंप रहा हो।

फिर बोले:

"ए कलुवा... आजु से तू ही मालिक है ई गद्दी का। हम अब बड़े लोगन से सौदा करेंगे। बची-कुची मिठइयां थोक में बेचेंगे।"

कलुवा ने पहले तो समझा गुप्ता जी मज़ाक कर रहे हैं।

फिर जब देखा कि उनके चेहरे पर वो पुराना बनिए वाला सख़्त-संकोच नहीं था, तो चुपचाप खड़ा हो गया। उसने ज़्यादा उछल-कूद भी नहीं की। वो भी जानता था कि मंगलवार के अलावा यह दुकान वैसे भी खाली पड़ी रहती है।

गुप्ता जी नहीं चाहते थे कि नीता या शहर का कोई प्राणी इस नए काम को भांप ले। इसलिए एक नए अवतार में दुकान में घुसे – चमचमाती गुलाबी शर्ट, सफेद झाड़ू जैसी दाढ़ी, तगड़ी मूंछें और लंबे-लंबे बाल जो गोलू की सलाह पर लगाए थे, ताकि उन्हें भगवान ब्रह्मः भी न पहचान पाए।

मिठाइयों के रंगीन डिब्बे वहां सजे हुए थे। लोग दूर से इन मिठाइयों को ऐसे देख रहे थे, जैसे कोई बूढा आशिक अपनी बिछड़ी प्रेमिका की बारात को निहारता हो। किसी ज़माने में ये अफवाह थी कि छंगे हलवाई का गुड़ उस किसान के खेतों से आता था, जो चाँदनी रात में गन्ने काटता था। उनका घी उस गाय से था, जिसे बच्चे कहानियां सुनाकर सुलाते थे। इन मिठाइयों के पीछे सिर्फ स्वाद नहीं, एक पुरानी दास्तान भी थी—वह दास्तान, जो गुप्ता के पूर्वजों ने अपनी मेहनत से गढ़ी थी। शायद इन कहानियों का उद्देश्य मिठाइयों को मशहूर करना था, लेकिन अब, इस बदलती दुनिया में, कौन इन बेतुकी बातों में उलझे? यहां तो बस चमक और कीमत की ही बात होती है, बाकी सब कुछ सिर्फ़ धुंधली यादों के रूप में सिमट कर रह जाता है।

गुप्ता हर सुबह एक तय रूटीन में बंधा हुआ पहले अपने घर से निकलता, पुरानी दुकान पर मिठाइयों का थाल रखता, और फिर जो भी बचता, उसे समेटकर नई दुकान ले जाता। यहां मिठाइयों को सोने-चांदी के वर्क में लपेट दिया जाता, जैसे किसी गरीब आदमी को अमीरों के महल में घुसने के लिए चमचमाती पोशाक पहनाई जाती हो। मगर सर्राफा बाजार में सब कुछ अलग था। वहां मिठाई खरीदने वाले कम थे, और बर्गर-चाट के ठेले वालों के बीच जीभ के चटखारों में खो जाने वाले ज्यादा।

मिश्रीलाल एक कोने में खड़ा, चुपचाप सब कुछ देखता रहता। न कुछ बोलता, न कुछ करता। बस खामोशी से इस बदलते वक्त की तस्वीर को अपने अंदर समेटे, जैसे नदी किनारे खड़ी मिट्टी, बहते पानी को देखती हो—जानते हुए कि उसे रोकने की उसकी कोई ताकत नहीं।

पूरी सर्दी बीत गई। गुप्ता की दुकान ऐसी सूनी पड़ी रहती थी जैसे उसमें धूप भी पूछ के घुसती हो। कोई ग्राहक आता भी तो ऐसे झांकता जैसे पुरानी हवेली में भूत देखने आया हो। अंदर गुप्ता गमछा ओढ़े बैठा रहता—मिठाई से ज़्यादा चिंता उनकी आँखों में दिखती थी।

एक शाम, जब हल्की गुलाबी ठंड शहर को अपनी गोद में ले रही थी, एक बैंक बाबू दुकान में घुस आया। आँखों में वैसी ही कठोरता, जैसी मुंशी प्रेमचंद के 'सूदखोर महाजन' में होती थी।

"गुप्ता भइया कहाँ हैं?"—उसने बिना मुस्कुराए, सपाट चेहरे से पूछा।

चमचमाती गुलाबी शर्ट, सफेद झाड़ू जैसी दाढ़ी, बिखरे बालों में खुद को बहरुपिया बनाए गुप्ता कुर्सी से हड़बड़ाकर उठा।

"भ... भइया! हम तो ईहाँ काम करत हैं। मालिक बाहर गए हैं।"—आवाज़ भारी करके बोले, जैसे ज़िंदगी की सच्चाई को भी छलने की कोशिश कर रहे हों।

बैंक बाबू ने उन्हें ऊपर से नीचे तक तौलती नज़रों से देखा। फिर बोला:

"अपने मालिक से कहिए कि तीन महीना से ईएमआई जैसे कुंभ के मेले में खो गई है। अगिला महीना के पहिले-पहिले भर दीजिए, नाहीं त दुकान

पर ताला लगवा दीजिएगा। सीज होई जाई। फिर मत कहिएगा कि बताय नहीं रहे!"

गुप्ता का दिल उसी पल जैसे सीने में उलट गया। आँखों के आगे बेटी की मुस्कुराती तस्वीर घूम गई।

उसी दिन तो खुशबू का बारहवीं का रिज़ल्ट आया था। पूरे जिले में टॉप किया था। घर के आँगन में जैसे पहली बार बसंती हवा बह रही थी। फूल नहीं खिले थे, सपने खिले थे।

खुशबू भागती हुई आई थी, गले लगी थी। गुप्ता की आँखों में खुशी थी, पर दिल में एक अनकहा बोझ। उस बोझ ने ज़्यादा वक़्त नहीं लिया।

गुप्ता ने जल्दी-जल्दी बाल-दाढ़ी काटी, गोलू को फ़ोन मिलाया, पर उससे पहले ही...

वो वही ज़मीन पर ढेर हो गया।

जैसे दिल का दौरा नहीं, कोई पुराना सपना टूट कर उनकी छाती पर गिर पड़ा हो।

घर में मिठाई नहीं, अब सन्नाटा था। बेटी का जश्न अधूरा रह गया। और गुप्ता?

वो फिर अस्पताल में थे — जिंदगी और व्यवस्था के बीच की धूल खाँसते हुए।

अस्पताल के उस कमरे में एक अजीब सा सन्नाटा फैला था। मौत की गंध थी या ज़िंदगी का ठहराव, कहना मुश्किल था। गोलू के वहां पहुंचते

ही डॉक्टर ने धीरे से कहा, " इट वास् पैनिक अटैक !" गोलू मिश्रा, जो बगल में खड़ा था, उसकी आवाज़ में एक अजीब सी टूटन आ गयी। उसने कहा, "हम जानत बानी, डाकटर साहब। गुप्ता के हियरा में एगो घाव बा, जे ओकरी पुरान दुकनिया के ईंटन से बनल बा।"

वह जानता था कि दुकान वाली बतकही अगर किसी तरह से नीता के कान में पड़ गई, तो अगला दिल का दौरा गुप्ता को नहीं, नीता को आ धमकेगा। यही सोच-बिचारके वह डॉक्टर और परिवार के बीच एक दीवार खड़ी करने की जुगत भिड़ा रहा था।

गुप्ता ने आँखें खोलीं, तो सामने छत की प्लास्टर उखड़ी सफेदी थी। अचानक दरवाज़ा ज़ोर से खुला और गोलू मिश्रा धड़धड़ाते हुए अंदर आया। हाथ में अख़बार था, और चेहरे पर वही बकरे की तरह तनी हुई तिरछी मुस्कान।

"उहां बिटिया जिला टॉप करके बइठल बाड़ी, अउर तू इहाँ बिसतरा तोड़त बाड़े!"

उसने कहा नहीं, फेंका — जैसे कोई पुराना हिसाब हो जिसे अब कलेजे पर मारना हो।

गुप्ता की आंखें सुन्न थीं। ड्रिप लगी उंगली में कंपन था — हल्का, मगर इतना साफ़ कि जैसे उसमें कोई पुरानी याद काँप रही हो।

"ऐसन लागत बा..."

गुप्ता ने बेहद धीमी आवाज़ में बुदबुदाया,

"...जइसन हम अपने बचपन के सपनवा के चबा गइल बानी..."

गोलू थोड़ी देर खड़ा रहा। फिर कुर्सी खींचकर बैठ गया। बोलने वाला गोलू, आज चुप हो गया था। उसने अख़बार गुप्ता की तरफ बढ़ाया—जैसे पहली बार किसी चीज़ में भरोसा हो।

अख़बार में मिश्रीलाल गुप्ता की बेटी की तस्वीर थी—सादा सलवार-कुर्ता पहने, गले में मेडल लटकाए।

उसकी आँखों में जो चमक थी, वही शायद गुप्ता की उंगली में कांप रही थी।

कमरे में खामोशी थी,

सिवाय उस मॉनिटर की बीप के, जो गुप्ता के दिल की हर धड़कन पर ताली बजा रहा था।

कुछ देर की चुप्पी के बाद, गोलू ने बेमन और बेरुखी से कहा, "गुपता, ई दुनिया अब बस दू चीजन के भूख जानत बिया - अधरम अउर बासना। अउर इन दूनो के हर केहू अपनी जिनगिया में सरकारी नौकरी के तरह बरतत बा, लेकिन खुलेआम कबहूँ ना मानत।" उसकी बातों में जो तल्खी थी, वो गुप्ता के दिल पर चुभ गई। पुराने जूते में गड़े कील की पीड़ा। कमरे में पसरी हुई चुप्पी अब और भारी हो चुकी थी। भादों की उमस भरी दोपहर सी असहनीय।

फिर गोलू ने ऐसा सुझाव दिया, जो सुनने पर कब्रों में दबी पुरानी हड्डियाँ भी सिहर उठें। “सेक्स टॉयज़,” उसने बेहद ठंडे लहजे में कहा। गुप्ता

के चेहरे पर उलझन साफ झलक रही थी। उसने हिचकिचाते हुए पूछा, “हम समझे नहीं, गुरु। ई का बा?”

गोलू ने गुप्ता को ऐसी नजरों से देखा, जैसे कोई तजुर्बेकार अपने से कई साल छोटे बच्चे को कुछ बुनियादी बातें सिखाने की कोशिश कर रहा हो। उसने गंभीर आवाज़ में कहा, “प्लास्टिक और धातु का सही इस्तेमाल है सेक्स टॉयज।” गुप्ता का मुँह ऐसा हो गया जैसे अभी अभी पानी में बुड़की लेके निकरे होय। गोलू ने पुनः समझाते हुए कहा "देखा भैया, ई दुनिया ऊपर से बड़ी शरीफ बनती है, लेकिन अंदर से धधकत बा। इनका उहे बेचा, जो इनके अंदर के आग ठंडा कर सके।"

गुप्ता की समझ में कुछ भी नहीं आया। उसने फिर झिझकते हुए पूछा, “ई सेक्स टॉयज़ का बला बा?”

गोलू की झुंझलाहट अब चेहरे पर साफ दिखने लगी। "अरे दद्दा, ई तो उहे बात हो गई जइसे बेटा बाप का शारीरिक सम्बन्ध सिखा रहा हो। सेक्स त जानते हो न?"

गुप्ता अब भी भौंचक्का था। उसने कोई जवाब नहीं दिया। कानों के पास जैसे झींगुर बजने लगे। गोलू ने गहरी सांस ली और फिर अपनी झुंझलाहट पर काबू पाते हुए कहा, "भइया, संस्कृत मीडियम से पढ़े हो का? सेक्स मतलब सम्भोग। सम्भोग का मतलब समझते हो कि नाहीं?"

गुप्ता के माथे पर बल पड़ गए। जैसे अचानक बात समझ में आ गई हो। उसने खीजते हुए कहा, “अरे हम सेक्स भी समझते हैं और सम्भोग भी।

लेकिन तुम ई क्या ऊलजलूल बतिया रहे हो? हम यहाँ हार्ट पर अटैक लिए पड़े हैं, और तुम साला हमका सम्भोग सिखा रहे हो!”

गुप्ता के इतना कहते ही गोलू समझ गया कि उसकी बात गुप्ता के दिमाग से टकरा कर वहीं गिर पड़ी है। कमरे में एक पल की खामोशी पसर गई, और गोलू ने सिर झटकते हुए खिड़की की तरफ देखना शुरू कर दिया, जैसे हार मान चुका हो।

"अरे रे... हम कौन होत है तोहरा सेक्स सिखावे वाला। हम तो बस बिजनेस आईडिया बतावत रहनी।"

"तो तहरा मतलब ई बा कि हम अपनी पुश्तैनी दुकान आ इज्जत छोड़के अब कोठा पर जा बैठीं?"

"अरे उहां तोहार कुछ ना हो सके। उ खातिर तो पुनर्जन्म लेना पड़ी। हम त बस सिंपल बात कहत हईं कि सेक्स टॉयज के कारोबार शुरू कर लो। सेक्स माने सेक्स, आ टॉयज माने खिलौना। जइसे सेक्स वाली दवाई बेचत हैं लोग, ठीक वइसही। अब उ दवाई कितना काम करता है, ई त तू खुद समझत होइब। लेकिन ई यंत्र से इंसान अपनी चरम सीमा तक पहुंच सकेगा।"

“चरम सीमा ?” गुप्ता ने अपने बक्का जैसे खुले मुँह से लबड़ियाते हुए पूछा ?

“हाँ ! चरम सीमा। इंसान को लगता है वो चाँद पर चढ़ जायेगा तो संतोष मिल जायेगा ? नहीं ? नहीं मिलेगा ? संतोष की सीमा सिर्फ सम्भोग से ही मिलेगी ? लम्बे वक़्त तक चलने वाले सम्भोग से। 2 मिनट वाले से

नहीं। अब इंसान चरम सीमा तक पहुंच नहीं पा रहा रही इसीलिए दुसरे की सीमा रेखा पार किये जा रहा है।” गोलू कुछ एक दो मिनट तक ऐसे ही बड़बड़ाता रहा।

गुप्ता ने अपनी हथेलियों को देखा, जो कभी गुड़ और चीनी की मिठास से सराबोर रहती थीं। "हे हनुमान जी, इस मूर्ख को माफ़ करना," उसने धीमी आवाज़ में कहा, उसकी आवाज़ में एक ऐसी लज्जा थी, जो सिर्फ़ एक भारतीय पुरुष ही पूरी तरह समझ सकता था। गोलू उन्हें ऐसे घूर रहा था, जैसे किसी अजूबे को देख रहा हो।

फिर गोलू ने वही किया जो भगवन किशन ने अरजुन की खातिर किया था। उसने एक गहरी सांस ली और बोला , "दुनिया को देखो, हर कहीं लुच्चापन की बेलें फइली पड़ी हैं। काहे चाही नीक नौकरी? ताकि सोहनी दुलहिनिया मिल जाय।"

गुप्ता ने अपनी भौंहें सिकोड़ीं और मुँह बिचकाकर दूसरी तरफ देखने लगे, जैसे गोलू की बातें सुनने से ही उनके कान में कीड़े पड़ जाएंगे। पर उनकी आँखों में एक अजीब सी चमक थी, जो कह रही थी कि वो हर शब्द सुन रहे हैं।

गोलू आगे बढ़ा, "काहे चाही बड़का जायदाद? ताकि ऐश-ओ-आराम कर सकें। एक ताकतवर आदमी अपनी ताकत काहे बढ़ावे है? ताकि दूसरन के अपनी मनमरजी से नचावे।"

तभी दरवाज़े पर खटखटाहट हुई और एक मोटी-ताज़ी नर्स , अपने हाथों में दवाइयों का ट्रे लिए, खड़खड़ाती हुई अंदर दाखिल हुई। उसके घुँघराले

बाल अस्त-व्यस्त थे और वो ऐसे चल रही थी जैसे उसके जूतों में पत्थर भर दिए गए हों। गुप्ता ने एक हल्की मुस्कान के साथ नर्स से दवाइयाँ ले लीं। नर्स ने जाते-जाते गोलू को एक और घुरकी भरी नज़र दी और कमरे से बाहर निकल गई, उसके जूतों की आवाज़ कॉरिडोर में धीरे-धीरे कम होती गई।

गोलू फिर से अपनी बात पर लौट आया, इस बार उसकी आवाज़ और धीमी थी, "सुनऽ गुरु, ई दुनिया में बस कामवासना ही सब कुछु है। गैर मोहब्बत कबो सिर्फ प्रेम खातिर ना बनती।"

गुप्ता के चेहरे पर अजीब-सा भाव आया, जैसे कोई पुराना ज़ख्म छू दिया गया हो। उनकी आँखें नम हो गईं और उन्होंने अपनी छोटी-सी मूंछों पर उंगलियां फेरीं।

"ओकर असली मकसद तो देह का सुख होला। तू समझत हवऽ संतोख का होला? संतोख, वही सुख जउन लड़कपन में दो-चार पइसा मिले पर लागत रहा।"

गुप्ता के हाथ से पानी का गिलास छलक गया, जैसे किसी ने उनके अंदर एक भूचाल ला दिया हो। गोलू ने बिना रुके अपनी बात जारी रखी।

"प्रेम अब तो कवियन की कल्पना बनिके रह गया है। और ई तब तलक रही, जब तलक इंसान अपनी वासना से ऊपर ना उठी। वासना एक ऐसन समुंदर हवे, जेकरा कउनो पार ना कर सकता।"

बाहर कॉरिडोर में फिर से चप्पलों की आवाज़ सुनाई दी। गुप्ता ने घबराकर गोलू को चुप रहने का इशारा किया, पर गोलू को जैसे किसी भूत ने पकड़ लिया था।

"अगर सचमुच तू लोगन के ई कामवासना से मुक्ति दिला सकऽ, तो समझऽ तू दुनिया के एक नया रास्ता दिखा दिहऽ। जब आदमी अपने वासना के बंधन से आजाद होई, तब वो दूसरे इंसान के चीज की तरह देखे से रोकि पाई।"

चप्पलों की आवाज़ दूर जा चुकी थी। गुप्ता ने राहत की सांस ली।

"ई दुनिया में जितने भी अपराध भरल बा, ओकर जड़ यही वासना है। जुग-जुग से बड़का-बड़का विचारक आके यही समझावत रहें कि कइसे वासना पर काबू पावल जाय। काहे? काहेकि उ जानत रहें, वासना हर बार नया रूप में आके ई धरती के बरबाद कर सकेला।"

गुप्ता ने अपना चेहरा हथेलियों में छिपा लिया, उनके कंधे हिलने लगे थे, रो रहे थे या हंस रहे थे, यह समझना मुश्किल था।

"और का पता, तू ही शिव के अवतार हो या हनुमान के। शायद यही खातिर भगवान तोहका छः उँगरियाँ दिहलें। आपन छठी अंगूरी से ई वासना के पहाड़ का उठा लेव। सोचऽ, गुरु, तू ई दुनिया के बदल सकत हवऽ।"

बेमन और फिकरी से गोलू अभी भी बोले जा रहा था, "गुप्ता, ई दुनिया अब बस दू चीज के भूख जानेला—अधरम और वासना। और इन दूनों के यहाँ हर केहू अपनी जिनगी में खूब इस्तेमाल करता है, लेकिन खुलेआम कबो मानता नाहीं।" गोलू की बातन में जो सच्चाई थी, वो गुप्ता के कलेजे में तीर की तरह धँस गयी। गुरु गुप्ता गहरे विचार में खो गया। पूंजीवाद, बाजारवाद, सब कुछ तो इस काम-वासना के इर्द-गिर्द घूमता है। लेकिन एक शादीशुदा आदमी होने के नाते, उसे सिर्फ़ यही कहना था, "अगर नीता

को पता चल गया तो?" जवाब में गोलू ने वही कहा जो वह अंत में कह सकता था, "क्या तुम्हारे पास अपनी दुकान बचाने का कोई और उपाय है?" गुप्ता को गोलू की  बात का कोई जवाब नहीं सूझा।

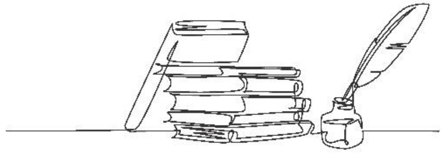

# रास भण्डार

गोलू होलसेल का पुराना खिलाड़ी था। उसे माल कब कहाँ खपाना है, इसका उतना ही पक्का अंदाज़ा था जितना पान की दुकान वाले को अपने उधारियों का। जब तक गुप्ता खुद को दोबारा अपने पैरों पर खड़ा करने की हालत में आया, तब तक गोलू मिश्रा पूरी दुकान का कायाकल्प कर चुका था। अब वो गुप्ता स्वीट्स नहीं, "रास भडार" हो चुका था।

नीली और लाल बत्तियों के बीच उस दुकान में हर वो चीज़ मौजूद थी, जो जवानी की ख्वाहिशों में रंग भरने के लिए जरूरी थी। कोने में गोलू मिश्रा इसी तरह फैला हुआ था जैसे उसने सारे जहां को अपने कदमों में सहेज लिया हो, और मेज़ पर रंग-बिरंगे पैकेट इधर-उधर बिखरे हुए थे। गुप्ता, जो कभी अपनी मिठास से दिलों में ताजगी भरता था, अब एक पुराने कपड़े में लिपटा, नकली दाढ़ी लगाए उस मेज़ के पास बैठा था।

"का हालात हो गया है हमार आज?" गुप्ता ने अपनी नकली दाढ़ी को मुँह पर ठीक करते हुए पूछा, जैसे अपनी ही बदली हुई तस्वीर को देख कर खुद से जवाब माँग रहा हो।

गोलू ने बेमन से जवाब दिया, "सुक्र मनावा की पुरानी दुकान नहीं बिकी। नाहीं त घर जाना मुस्किल हो जात। कम से कम घर जाय लायक त बचा हई, नाहीं त सीधा समसान जाय के परत।"

गुप्ता कुछ पल को चुप हो गया। फिर चिंता भरी आवाज़ में बोला, "अगर कौनो हमका पहचान लिहिस त का?"

गोलू ने हँसते हुए कहा,

"जब अबहीं तक कौनो ना पहचान पाया, त अब का ख़ाक पहचानी?"

उसकी हँसी में बेफिक्री थी, पर आँखों में हल्की घबराहट छुपी थी।

गुप्ता ने कुर्सी से उठते हुए माथे से पसीना पोंछा और भुनभुनाया,

"पहले पकड़ाता त लोग कहता – चलो भइया, हलवाई निकला। अब पकड़ा गए न, त कपार से लंगोट तक नोच डाले लोग! कहेंगे – देखो देखो, असली गुप्ता सामने आ गया!"

गोलू कुछ पल चुप रहा। उसके चेहरे पर मुस्कान थी, पर वो भी गुप्ता की बात में छुपे डर को समझ रहा था।

थोड़ी देर बाद वो गम्भीर होकर बोला:

“दाढ़ी मत गिरने देना भइया... नाहीं त ई बार हार्ट के अटैक तोहका नाहीं, नीता दीदी का आई।"

गुप्ता ने झट से शीशे में अपनी शक्ल देखी, जैसे वेशभूषा से ज़्यादा अपने आत्मसम्मान को ढकने की तसल्ली कर रहा हो। यह वेशभूषा सिर्फ़ उसकी गरीबी का पर्दा नहीं, बल्कि उसके भीतर की नैतिक लड़ाई का चेहरा थी।

वो हाथ, जो कभी लड्डू की नरमी और पेड़े की मिठास को आकार देते थे, अब उन चीजों की तरफ बढ़ रहे थे, जिन्हें समाज पाप मानता है। गुप्ता के भीतर का हलवाई अब यह सोचने में उलझा था कि आखिर कब तक वह अपनी आत्मा की आवाज़ को यूँ दाढ़ी के पीछे छिपाकर रख पाएगा।

गोलू ने पैकेट खोला। अंदर से एक अजीबोगरीब रबर का उपकरण निकला, जिसे देखकर गुप्ता की निगाहें वहीं ठहर गईं। चेहरे पर एक भाव था—घृणा, जिज्ञासा और कहीं न कहीं एक हार का गहरा बोध। यह दुकान, जो कभी उसकी सपनों की जगह थी, अब उसे पराई-सी लगने लगी थी। न कोई महक बची थी, न उसकी उम्मीदों की सजावट।

गुप्ता की आँखों से झांकते भावों ने जैसे मन के गहरे कोने को खोल दिया। वो फूट पड़ा, “"यार, हमका लागत है कि कमी हमही में है।" उसकी आवाज में टूटा हुआ विश्वास और खुद पर खीझ का मेल था।

गोलू ने चुपचाप उसकी तरफ देखा। फिर उसकी निगाह अपने हाथ में पकड़े उस डिल्डो पर पड़ी। गुप्ता की शर्म में डूबती आँखों ने जैसे उसे भी झेंपा दिया। हड़बड़ाकर उसने उपकरण वापस रख दिया, जैसे कोई पाप छू लिया हो।

"अब का हो गया यार?"गोलू ने बात को हल्का करने की कोशिश की।

गुप्ता ने एक लंबी सांस भरी। ""कुछ नाहीं। बस ई समझ आ गया कि बचपन मा हमार उमिर के लड़का हमका काहे नाहीं खेलावत रहे। हम त हमेशा अपने से छोट लड़कन के साथे खेलत रहत रहेन।" उसकी आवाज में हार का ऐसा असर था, जैसे कोई पहाड़ चुपचाप नदी को रास्ता दे दे।

कमरे में एक पल का सन्नाटा छा गया। खामोशी का यह पहाड़ गोलू की बेचैनी को और गहरा कर रहा था। फिर अचानक गोलू का स्वर कमरे की हवा को चीरता हुआ निकला, "ई देस के आबादी 140 करोड़ है। अउर ई देस 'सेक्स' बोलत क खातिरौ घबरावत हौ।" उसकी आवाज़ में गुस्सा नहीं था, बल्कि एक गहरी थकान थी—थकान उस सच से, जिसे न वह छिपा सकता था, न झुठला सकता था। गोलू ने अचानक अपने चेहरे पर एक अजीब सी चमक लाते हुए कहा, "हम एक्सपोर्ट-इम्पोर्ट के काम करत हई। छोट-छोटे लेवल पर सही, पर ई गारंटी के साथ कह सकित हईं कि आज के डेट मा ई चीज के डिमांड है। अगर हम लोग ई चीज सीधा दुकान पर बेचें लागी त लोग जागरूक होइहैं। सोचो, अगर वासना शांत करे के यंत्र सीधे आदमी के हाथ मा दे दे तो मुमकिन है कि बलात्कार जैसन घटनन मा कमी आ जाई।" यह बात कहने के बाद गोलू थोड़ी देर के लिए चुप हो गया। गुप्ता के चेहरे पर कुछ नहीं बदला, पर कमरे की हवा में जैसे किसी ने कोई बड़ा प्रश्नचिह्न टांग दिया हो।

गुप्ता ने न चाहते हुए भी दुकान शुरु तो कर दी पर वो मन ही मन ठान चुका था कि ई एम आई ख़तम होते ही वो इस धंधे से बाहर निकल जाएगा। जुमा जुमा कुछ दो ही जुमें बीते थे कि उसकी दुकान कुछ ऐसी मशहूर हुई जैसे इलाहाबाद में ताजमहल खुल गया हो।

गुप्ता के पहले ग्राहक भेष बदल कर आये परिचित ताकि उन्हें कोई पहचान न सके। हर चेहरे पर झिझक, हर आवाज़ में कंपन, और आँखों में शर्म-मिश्रित उत्सुकता। इलाहाबाद की सड़कें तो गंगा-जमुनी तहज़ीब के गीत गाती थीं, मगर घरों के अंदर कुछ और ही संगीत बज रहा था - दमित

इच्छाओं का, दबी हुई आवाज़ों का। हर ओर यौन-दमन का ऐसा जाल था, जो न सिर्फ़ मोहल्लों की चौखटों पर खड़े पहरेदारों के रूप में, बल्कि हर घर के आँगन में पनप रहा था। गुप्ता की छोटी-सी दुकान धीरे-धीरे वह मकाम बन गई जहाँ शब्द नहीं, नज़रें बोलती थीं। जहाँ लोग सिर्फ़ सामान ही नहीं, अपनी दबी हुई ख्वाहिशों के लिए हवा खरीदने आते थे। ख़ामोशी से होने वाली यह लेन-देन अब सिर्फ़ व्यापार नहीं रही थी, बल्कि एक ऐसी मूक क्रांति का रूप ले चुकी थी, जिसके आगे बढ़ते कदमों की आहट से पूरे शहर की नैतिकता की नींव हिल रही थी।

ख़बर ऐसे फैली जैसे किसी पुराने मोहल्ले में जुए के अड्डे का पता लग जाए। लोग छिपकर आते—मर्द बुर्क़े में, औरतें पतियों के कपड़ों में और पति औरतों के। आँखें शर्म और डर से झुकी होतीं, मगर हाथों की हरकतें लालच और बेकरारी से भरी। कोई बाइक पर सवार दुकान में आता, लेकिन पहचान छुपाने की ऐसी चिंता कि हेलमेट तक नहीं उतारता। और इनमें से हर दसवां ग्राहक बाहर नैतिकता का झंडा उठाने वाला ठेकेदार होता, जो घर में जाकर समाज की मर्यादा का भाषण देता।

सबसे ज्यादा डिमांड "सुखदंड" (डिल्डो) और "झनझनिया बॉस" (वाइब्रेटर) की थी। और इनका सबसे बड़ा खरीदार? वे औरतें, जो चुपके से आतीं, अपने चेहरे पर समाज की बनाई नैतिकता का नकाब ओढ़े। उनमें से ज्यादातर ने खुद को छिपाने के लिए बुरका पहना होता। उनके चेहरे पर भय का साया होता, लेकिन आँखों में एक अदम्य जिज्ञासा। गुप्ता देख रहा था कि उसकी दुकान का कोना-कोना एक ऐसा चुपचाप गवाह बन गया

था, जहाँ इंसानी कमजोरियों का काला सच खुलकर रोशनी में नाच रहा था।

मिश्रीलाल गुप्ता की तिजोरी भर रही थी, जैसे तपती धरती पहली बारिश में प्यास बुझाती है। हर महीने किश्त भरते वक्त उसके चेहरे पर एक अजीब-सा गर्व छलकता, मानो पूरी दुनिया को ठेंगा दिखा रहा हो। उसे लगता, जैसे समाज ने जो जंजीरें उसके लिए बनाई थीं, वह हर किस्त के साथ उन्हें तोड़ रहा था।

उस शाम जब अंधेरे की चादर धीरे-धीरे गलियों को ढकने लगी थी, गुप्ता की दुकान में एक परछाईं सरकती हुई आई—उसका चचेरा भाई, कमलकांत। उसे देखते ही गुप्ता के भीतर अजीब-सा भय सरसराया। उसका हाथ अनायास ही अपनी नकली दाढ़ी तक चला गया। उसने झट से अपने पीछे लगे आईने में अपना चेहरा देखा और राहत की साँस ली—हाँ, यह नकाब इतना पुख्ता था कि कमलकांत तो क्या, खुद मौत भी आ जाए, तो उसे पहचान न पाए।

कमलकांत के हाथ काँप रहे थे, जैसे किसी पेड़ की सबसे कमजोर टहनी पर बैठा पत्ता, जो हवा के एक झोंके से गिर सकता था। जब उसने वह निषिद्ध पैकेट लिया, उसकी आँखों में शर्म और चाहत का अजीब संगम था।

गुप्ता मुस्कुराया। उसकी कामयाबी उस समाज के चेहरे पर पड़ा नकाब खींच रही थी, जो दिन में पवित्रता का पाठ पढ़ाता और रात में अपने ही बनाए पापों में डूब जाता।

एक दिन, जब गुप्ता दुकान में सामान को क्रम से रख रहा था, पहली बार कोई बिना किसी नकाब उसकी दुकान में दाखिल हुआ। वह शहर की मशहूर समाज सेविका थी, जिसके भाषणों से नारीत्व की महक आती थी। पर आज उसकी आँखों में एक अजीब चमक थी। वह एक विशेष उपकरण को घूरते हुए बुदबुदाई, "यह... यह मेरे पति के लिए है ।" गुप्ता मुस्कुराया। उसे अब आश्चर्य नहीं होता था। वह जानता था कि हर इंसान के भीतर एक वासना का पिशाच छुपा होता है, जो सिर्फ़ मौक़े की तलाश में रहता है। गुप्ता, वह मौका मुहैया करा रहा था - एक ऐसा मौक़ा जो किसी के जीवन को बदल सकता था, एक ऐसा मौका जो किसी को हवस का शिकार होने से बचा सकता था।

मिश्रीलाल गुप्ता एक रविवार की शाम अपनी दुकान से इस अंदाज़ में निकला जैसे कोई मुर्गा दड़बे से भागते-भागते सोच रहा हो कि कहीं हलवाई की कढ़ाई में न पहुंच जाए। दुकान के बाहर पीपल के पेड़ के पीछे खड़े होकर उसने ऐसी सावधानी से अपना भेष बदला, मानो कोई जासूस अपनी पहचान छुपा रहा हो। लेकिन चेहरे पर डर की पतली परछाईं थी, जो इस बात का ऐलान कर रही थी कि "भाई साहब, कोई आपको घूर रहा है।"

वहां से गुप्ता साहब ऐसे निकले, जैसे किसी फिल्म का खलनायक पुलिस से बचते हुए अपने अड्डे की तरफ जा रहा हो। गुप्ता के कदम गोलू के घर की तरफ बढ़े और जैसे ही दरवाजे पर पहुंचे, उन्होंने ऐसी लंबी सांस ली मानो कुंभ के मेले में बिछड़ा बच्चा मां को पाकर चैन की सांस ले। अंदर

का माहौल क्या था? छत पर दोस्ती के पुराने नोटिस की सुनवाई चल रही थी, लेकिन अदालत की भाषा शराब की बोतलें थीं।

राजकुमारी, जो अपने नाम से बिल्कुल उलट, ट्रे पर पैग लेकर ऐसे खड़ी थी। बोतल की खनक ने रात के सन्नाटे में जैसे अलार्म बजा दिया। गुप्ता ने पहला घूंट लिया, और फिर तो ख्यालों की गंगा बहने लगी। हर घूंट उसे ऐसा लग रहा था जैसे वह अपनी पहचान से दूर, पर किसी भारी-भरकम सवाल के और करीब जा रहा हो।

"छंगे हलवाई सीन्स 1856 के क्या हाल है?" गोलू ने भी पहला घूंट भरते ही पूछ लिया। सवाल ऐसा था, गोया कोई तीर चलाया गया हो। गुप्ता के चेहरे का लालपन दिखने लगा जैसे 'मिठाई' का दर्द कुछ ज़्यादा मीठा या शायद कसैला था। उधर राजकुमारी, बिना सवाल-जवाब में पड़े, मगन भाव से जाम भरे जा रही थी। गुप्ता आसमान में उड़ती चिड़ियों को इस अंदाज़ में देख रहा था जैसे वहीं से कोई समाधान टपक पड़ेगा। शराब जैसे-जैसे दिमाग़ की सीढ़ियाँ चढ़ने लगी, गुप्ता की ज़ुबान भी दिल की तिजोरी खोलने लगी। वो एक भारी सांस लेते हुए बोला।

"हर रात एक ख़्वाब आता है," उसने कहा, "पुरखों की आत्माएँ बीच में आकर कोसती हैं... लगता है ताबीज़ पिघलकर हाथों से फिसल गया है। जैसे हमने उन्हें कहीं धोखा दिया हो।"

गोलू अपनी आख़िरी घूँट के साथ उछला, "ए गुप्ता भइया, तुमाए साथ दिक्कत ई है कि दुई पैग चढ़त ही चुन्नीलाल बन जात हो। अब बात कान

खोल के सुन लो — जे दिन ई रास भण्डार बंद होई गवा न, ओ दिन तुमका नींद नइकी आई ! फिर तो ठेका ठेका करत हर गली नुक्कड़ पर भटकबा!"

राजकुमारी ऐसे बोली जैसे कोई गुप्त राज पकड़ में आ गया हो —

"हाँ भइया, दुकान बंद होई, त न नींद उड़िहै न पुरखवा सपने में आके गरियइहैं!"

गोलू की हँसी छूट पड़ी, गुप्ता भी हँसा—

फिर हँसी, दारू, अउर रात की हवा... तीनों मिल के ऐसे निकले जैसे कचहरी से बाइज्जत बरी होके बारात जा रही हो।

तभी गोलू ने जैसे किसी गहरी राज़ की गठरी खोल दी, " गुप्पन भइया, एक बात गांठ बाँध लो — दुनिया में सबसे डरावना चीज़ अगर कुछ है न, तो ऊ है गरीबी! भूत-प्रेतवा तक देख के थरथराइ जात हैं। अब बताव, जब भूत-प्रेतई डर के किनारे हो जाएं, तब बेचारा आदमी कहाँ जाई? ई गरीबी ऐसी चुड़ैल है जौन नशा भी उतार देत है अउर शायरी के काफिया तक भूलवा देत है। बाकी अंत में बचत का है? बस एक बोतल — ओही पर सबकी निगाह, ओही में सबका भरोसा। जे बोतल ना होती न, तो आधा इलाहाबाद तो कब का संत बन गवा होता!"

गोलू की बात सुनते ही गुप्ता का गिल्ट और नशा छू मंतर हो गया।

रात घिर आई थी। गुप्ता जब घर लौटा, तो देखा, नीता आँगन में बैठी थी। उसे देखते ही नीता की जुबान ऐसे चली, जैसे किसी वकील को अपने मुवक्किल की हार पहले से ही पता हो, पर दलीलें देने से पीछे न हटे।

"आज तो फिर बड़ा मजा मार लिहे हो, अब घरवा में हमरे खातिर दुइ गो निवाला का पार्टी दे द!"

नीता के शब्द ठीक वही तीर थे, जो गुप्ता के सीने के पार हो जाते। उसने कोई जवाब नहीं दिया। चुपचाप चापाकल पर गया, हाथ-मुँह धोया—जैसे अपने गुनाहों की स्याही पानी में घोलकर बहा देना चाहता हो। वापस आकर सबके बीच बैठ गया।

नीता का अगला वार ऐसा था जैसे गुप्ता के अंदर जो थोड़ा बहुत मर्दानगी का चूरा बचा था, उसे भी झाड़ू से बुहार के बाहर फेंक देना हो।

"हमका सब मालूम है! हार्ट अटैक काहे आइल है, बूझे का?"

इतना सुनते ही गुप्ता के कान में झींगुर नहीं, पूरा नगर वधू संगीत मंडली 'राग झनझना' बजाने लगी।

"का मालूम पड़ गवा?" — गुप्ता के शरीर से पसीना ऐसे फूटा जैसे सरकारी दफ्तर में विज़िलेंस घुस आई हो।

"अरे बतावा!" — इस बार गला फाड़ के बोला, जैसे खुद के पाप को भी चिल्ला के कुबूल कर लेना चाहता हो।

नीता ने वही पुराना स्टील का भगोना सिंक में पटकते हुए जवाब दिया —

"हनुमान जी क परसाद बेंचत हो अउर खुदे दारू गटकत हो! एही से तो बरकत नाहीं होइ रही तुमरी!"

गुप्ता को पल भर को लगा कि जैसे जासूस कैमरा ले के पीछे पड़ा हो और वो रंगे हाथ रास भण्डार में धर लिया गया हो। मगर गनीमत रही, धरपकड़ सिर्फ जुबानी थी। घबराहट में बोले:

"अच्छा ठीक बा भाई!" — और भीतर ऐसे घुसा जैसे कोर्ट में ज़मानत मिल गई हो।

दो सेकंड के लिए तो गुप्ता को लगने लगा कि बाहर खड़ा भैंसा, दरअसल यमराज का स्कूटर है — जो सिर्फ उसे लेने आया है, और टाइम से पहले ही आ पहुंचा।

थोड़ी देर बाद नीता भी आई। बड़बड़ाते हुए गुप्ता के पास बैठ गई। गुप्ता संकोच और डर के मारे दूसरी तरफ करवट लेकर लेट गया। नीता ने पीछे से एक और तीर छोड़ा, "करवट लेने से ये अमोनिया और शराब की गंध नहीं जाएगी।" इतना कहकर वह भी दूसरी तरफ करवट लेकर लेट गई। थोड़ी देर में खिड़की की दरारों से सुबह की हल्की सी रोशनी कमरे में रिसने लगी। गली में दूधवाले की साइकिल की घंटी बजी और चाय के ठेले से उठती उबलती केतली की सीटी ने एक नए दिन की दस्तक दी।

कस्बे की गलियों में धूप की तपिश थी और एक अजीब सी खबर भी। मोहल्ले की औरतें सत्यनारायण की कथा के बहाने इकट्ठी हुई थीं, लेकिन कथा से ज़्यादा उनकी दिलचस्पी एक रहस्यमय वस्तु में थी, जिसे वे 'जादुई झुनझुना' कहती थीं। हमारे समाज में नाम बड़े महत्व रखते हैं। जिस चीज़ का नाम न ले सकें, उसे कोई न कोई ऐसा नाम दे दिया जाता है जो न तो बहुत स्पष्ट हो और न ही बहुत अस्पष्ट। यही कारण था कि पश्चिम से

आयातित इस यंत्र को किसी ने 'जादुई झुनझुना' कहा, किसी ने 'सुखदंड' और कुछ साहसी महिलाओं ने इसे 'कामदेव का अस्त्र' की संज्ञा दी। असल में नाम बदलने की परंपरा तो अपने देश में उसी दिन शुरू हो गई थी, जब कंडोम को 'टोपी' कहना शुरू हुआ।

कोई मेडिकल स्टोर पर जाकर कहता —

"भइया, उ... प्रोटेक्शन दे द न!"

दूसरा हिचकिचाता हुआ बोला —

"रेन कोट वाला चीज़ है?"

कोई सीधा 'छतरी' माँग लेता, जैसे भीगने से बचना हो — पर कंडोम, ये कहने की हिम्मत किसी में नहीं थी। आगे पंडित जी कथा बांच रहे थे और पीछे झुनझुने की कथा चल रही थी।

जब औरतें 'जादुई झुनझुना' पर आ गईं, तो पान वाली मौसी ने अपनी चूना लगी उँगली हवा में उठाई और बोलीं:

"सुनो बिटिया लोग... ई सब नया नाहीं है। हमार ज़माना में भी एक चीज़ चलत रही, मोटर से ना, मन से चलत रही!"

और फिर हँसी — ऐसी हँसी, जिसमें आधी औरतें हैरान और आधी को लगा कि मौसी के पास शायद ओरिजिनल 'झुनझुना' का इतिहास है।

फिर धीरे से बोलीं:

"नाम चाहे जो दे दो... सुखदंड कहो, प्रेमदंड कहो या बिछौना सुखवर्धक यंत्र। बात एके है।"

बाक़ी औरतें कुछ शर्माईं, कुछ गुनगुनाईं — लेकिन सब जान गईं कि मौसी की बात में वजन था। मौसी ने पान बनाते हुए आखिर में ठप्पा लगाया:

"ई झुनझुना-वुनझुना नया चीज़ नाहीं, बस अब कंपनी वाले बना के बेंचत हैं... पहले हम लोग बनावत रहेन, बिना बैटरी के!"

मौसी का पान का ठेला घर के बाहर ही था — बासी गुलाबजल की शीशी और एक रेडियो जो हमेशा धुन से ज़्यादा खर्राटे मारता था। लेकिन असली रेडियो तो मौसी ख़ुद थीं — सुबह की खबर, दोपहर की चुगली, और रात का विश्लेषण, सब लाइव देती थीं।

मौसी पान बांटते हुए बोलीं:

"देख बिटिया, सच्चाई ई है कि समाज इज्जत के नाम पर औरत को सब छिपाने को कहता है — मन, शरीर, इच्छा... सब। बाक़ी उ पुरुष के ठहाके में सब जायज़ हो जात है। लेकिन हमका बताओ — जब इच्छा दोनों की है, तो शर्म अकेले औरत की काहे हो?"

और ये कहकर उन्होंने झोले से 'भीगी सिलवटें – लव गुरु' की पुरानी किताब निकाली — औरतों की तरफ देखकर मुस्काईं:

"बोलो, पढ़ब की सुनब?" सबकी सहमति से मौसी ने कहानी बांचनी शुरू की।

उधर पंडित जी की आँखों में गुस्सा खौल रहा था। वे समझ नहीं पा रहे थे कि धर्म और आधुनिकता की इस खिचड़ी का क्या अर्थ निकाला जाए।

एक तरफ सत्यनारायण की कथा चल रही थी और दूसरी तरफ औरतें 'झुनझुना पुराण' की चर्चा में मग्न थीं। मैं सोचता हूँ कि समाज में परिवर्तन कैसे आता है? क्या यह धीरे-धीरे आता है या एक झटके में? शायद दोनों तरह से। जैसे पानी का घड़ा बूंद-बूंद भरता है और फिर एक दिन अचानक फूट जाता है, वैसे ही समाज में भी परिवर्तन की बूंदें इकट्ठी होती रहती हैं और फिर एक दिन वह सब कुछ बदल जाता है। इलाहाबाद में भी कुछ ऐसा ही हो रहा था। यहाँ की पवित्र धरती पर एक सेक्स टॉय शॉप का खुलना, वह भी चुनावी माहौल में, एक विस्फोट से कम नहीं था। लेकिन क्या आप जानते हैं कि विस्फोट के बाद क्या होता है? वह तो समय ही बताएगा।

गुप्ता की दुकान में बुरका पहने औरतों का आना जाना हर दिन बढ़ता जा रहा था। एक दिन एक बुरका पहने महिला दुकान में आई। गुप्ता को पहली बार यह महसूस हुआ कि शायद यह औरत नहीं, कोई मर्द हो। महिला ने थोड़ी देर तक पैकेट ढूँढने के बाद एक छोटा पैकेट गुप्ता के सामने रखा। जब गुप्ता ने उस पैकेट को देखा, तो उसकी आँखों के सामने कुछ अजीब-सी चीजें थीं—कॉक रिंग, पेनिस कवर और पेनिस पंप।

"बहनजी, बुरा न मानिएगा," गुप्ता ने संजीदगी का मुखौटा पहनकर धीमे स्वर में कहा। " हमें लगता है ई सामान आप के मतलब का नहीं है।" बहनजी संबोधन कहते समय गुप्ता को भीतर-ही-भीतर एक झेंप सी महसूस हुई। यह शब्द जैसे इस तरह के माहौल में थोड़ा असंगत सा महसूस हो रहा था, जैसे किसी आधुनिक डांस क्लब में, अचानक से माता रानी की आरती चला दी गयी  हो।

"जी, ये मेरे हस्बैंड के लिए हैं," बुरके के अंदर से मुलायम आवाज आई। उसी वक्त गुप्ता की नजर महिला के हाथों पर पड़ी और उसने अपने अंदर एक ठंडी सी लहर महसूस की। अब उसे पूरा यकीन हो गया—यह औरत नहीं, बल्कि मर्द था। गुप्ता ने उसकी पहचान का पीछा किया और पाया कि यह शख्स दरअसल एक उच्च न्यायालय का जज था। तभी उसे गोलू की बातें याद आईं, और उसके मन में एक नया विश्वास धीरे-धीरे घर करने लगा।

यह शुरुआत थी। कुछ ही दिनों में हर जात धर्म की महिलाएं भी बुर्के में लिपटी हुई गुप्ता के पास आने लगीं। गुप्ता अपनी भारी आवाज़ को सफेद दाढ़ी के पीछे छिपाकर निकालता था ताकि कोई उसे गलती से भी पहचान न सके। शर्मीली औरतें जब कामोपकरणों के बारे में पूछतीं तो वह पलटकर शर्मा जाता था। लेकिन थोड़ी देर बाद हंसकर उन उपकरणों की विशेषताएं बताने लगता और मज़े से उन्हें बेच देता था।

उसने सबसे पहले बाकायदा हर तरह के सेक्स टॉयज के बारे में जानकारी जुटाना शुरू किया। पर गुप्ता के लिए सबसे बड़ी समस्या यह थी कि उन खिलौनों को बेचने के लिए कौन सी भाषा का इस्तेमाल किया जाए, ताकि वह ग्राहकों को अश्लील न लगे। तभी उसे गोलू की कही एक बात याद आई— "भैया, मत भूलिए कि आप कभी एक कवि थे, और एक कवि कड़वी से कड़वी बात में भी चाशनी घोल सकता है।" यह बात जैसे उसके भीतर एक नया जोश भर गई, और उसने सोचा कि अगर शब्दों के स्वाद को ठीक से पकड़ा जाए, तो कोई भी चीज़ ग्राहकों को आसानी से बेचीं जा सकती है।

बस फिर क्या था, गुप्ता साहब ने अपने अनोखे अंदाज़ में उन सब सेक्स टॉयज को एक नया रूप दे डाला। उनकी सोच ने इन साधारण चीज़ों को न केवल नाम, बल्कि एक नया मायने भी दे डाला। डिलडो को उसने "सुखदंड" का नाम दिया, जैसे कोई दुर्लभ कलाकृति हो। वाइब्रेटर, जो कभी सिर्फ एक साधारण यंत्र था, अब "झनझनिया बॉस" बन गया। एनल प्लग को गुप्ता ने "गुप्त चमत्कार" का ताज पहनाया और सेक्स डॉल को "नीली परी" बना दिया। पेनिस पंप को अब "संबंध सुधारक" का दर्जा मिल गया और ब्लाइंडफोल्ड को "सपनों का राजकुमार" कहकर नया जीवन दे दिया। इस तरह गुप्ता ने हर वस्तु को एक अलग पहचान दी, जैसे किसी कला की जीवित कृति हो। थोड़े ही समय में ये नाम पूरे शहर में किसी गुप्त कोड की तरह मशहूर हो गए और मशहूर हो गयी थी उनकी दुकान “रास भंडार” भी।

लेकिन एक दिन जब हेलमेट के पीछे छिपे एक शख्स ने जादुई झुनझुने के लिए पैसे निकाले तो गुप्ता के पैर उखड़ गए। सच को निगलना जितना आसान था, उसे पचाना गुप्ता के बस की बात नहीं रही। वह झुककर गोलू के सामने उलटी कर बैठा। दोनों घाट पर बैठे, गंगा की धारा निहारते रहे। पानी बहता जा रहा था, मानो पूरे शहर के पाप अपने साथ बहा ले जाना चाहता हो। डुबकियां लेने वाले लोग शायद अपने गुनाहों को धोने की कोशिश कर रहे थे। गोलू ने धीरे से गुप्ता की ओर देखा, "यार, हमें तो ये समझ में नहीं आता कि हमारी दुकान में ज्यादातर औरतें बुर्के में क्यों आती हैं?" गुप्ता ने बड़बड़ाते हुए कहा। गोलू ने मजाक में कहा, "अरे भइया, ई कौन नई बात है! सालन से जो ज्वालामुखी दबा पड़ा हो, ऊ एक दिन त

फूटे के ही था। अब चाहे धरती फटे, या मोहल्ला!" गोलू कुछ मजाकिया अंदाज में बोला।

पर यह भी सच था कि मुंह छिपाने वाले लोग सिर्फ गुप्ता की दुकान तक ही सीमित नहीं थे। मुंह छिपाने की यह भीड़ पुरानी स्टेशन वाली गली की तरफ भी जाती थी। वहाँ पर यह लोग लुक़मानी दवा के लिए पहुँचते थे, जो उनकी मर्दाना ताकत बढ़ाने का दावा करती थी। अब यह ताकत किसे मिली, यह राज आज तक राज ही था। क्योंकि वहाँ जाने वाले लोग तब तक अपना गमछा और हेलमेट नहीं उतारते, जब तक हकीम साहब के पीसीओ जैसे दिखने वाले केबिन में न पहुँच जाएं।

"उस इमारत को न खंडहर कह सकते थे, न मकान। बाहर से देखो तो सीलन से लथपथ दीवारें, जिन पर कभी सफेदी रही हो तो अब धब्बे बन के शर्मिंदा हो रही थी। छत ऐसी कि हर तीसरी टाइल नीचे गिरने की कसम खा चुकी हो, और खिड़कियां? अरे वही, जिनके शीशे तो सालों पहले टूट गए थे, अब बस लोहे की जंग लगी जालियों से झांकती थीं।

गेट पर एक बोर्ड टंगा था—'लुक़मानी दवा खाना'—पर बोर्ड टेढ़ा था और 'खाना' शब्द में 'ना' गायब था। अंदर घुसो तो लंबा सा गलियारा, जिसमें बल्ब ऐसे टिमटिमाते थे जैसे जान-बूझकर डरावना माहौल बना रहे हों। पंखे की आवाज़ इतनी तेज़ कि मरीज की खांसी उसमें गुम हो जाए, और जमीन पे चीकट ऐसी कि अगर पैर संभाल के न रखो तो फिसल के सीधा एक्स-रे रूम तक पहुँच जाओ।

और वहीं, उस गलियारे में, बेंचों पर टेढ़ा-मेढ़ा बैठा रहता था एक मरीज़ समाज। उनके चेहरे इतने ढंके होते थे, जैसे वे किसी सेक्स रैकेट के पकड़े गए मुल्जिम हों। गमछों के बीच दो हेलमेट से ढकी खोपड़िया एक लम्बी चरमराती बेंच में बैठे अपनी बारी के आने का इंतज़ार कर रहे थे। हर थोड़ी देर में वीर्य रस रहित एक कम्पाउंडर आता और एक पर्ची से एक नाम चिल्लाता।

उस दिन लुक़मानी दवा खाने में अपनी बारी का इन्तजार करती नकाब पॉश भीड़ के बीच एक पुरवाई सी बतकही चल रही थी।“अच्छा भैया ये हकीम आल्हा सब से चेक करत है का ?” बेंच से एक आवाज़ फुसफुसाई।

“हां, हाँ अरे ये तुम्हये ऊदल उसी से चेक करिहैं।” हेलमेट के पीछे से जवाब आया ही था कि वहां बैठे नकाब पोशों के पीच ठहाके शुरु हो गए। इसी बीच, हकीम साहब के केबिन से बड़बड़ाता हुआ एक नकाबपोश बाहर निकला।

हकीम साहब ने कहा “चाय छोड़ दो।” हमने कहा, “संजीवनी बूटी भला कोई छोड़ सकता है?” पर हकीम साहब बिगड़ पड़े, बोले, “इस देश का मर्द 35 के बाद एसिडिटी का मरीज हो जाता है। मिलिंद सोमन को देखो!” हमने भी जवाब दे दिया, “हकीम साहब, इलाहाबादी ज़ुबान मरते दम तक जवान रहती है। शरीर का क्या है शरीर तो नश्वर है।” हकीम साहब फिर से बिगड़ गए, और अपना आल्हा हमारे कूल्हे में दे मारा। “अब बताओ, ये भी कोई बात हुई?" बड़बड़ाते हुए वह दवा खाने से बाहर चला गया। ठीक उसी वक्त, वीर्य रस से रहित कंपाउंडर ने अगला नाम पुकारा ही था, कि एक सफेद कुर्ता-पाजामा पहने नकाबपोशों का झुंड दवा खाने में घुस

आया। सबसे आगे वाला, बिना किसी इजाजत के, सीधे हकीम साहब के केबिन में घुस गया। बाहर बैठे मरीज, जो अपनी बारी का इंतजार कर रहे थे, चुपचाप तमाशा देख रहे थे। थोड़ी ही देर बाद, वह नकाबपोश नेता जैसा आदमी, ठहाके लगाते हुए हकीम साहब के साथ केबिन से बाहर निकला। अब सबको समझ में आया कि सफेद कुर्ते-पाजामे में लिपटा वह आदमी कोई आम आदमी नहीं था। सभी बेसब्री से उसका चेहरा देखना चाहते थे, लेकिन उसका चेहरा गमछे से इस कदर लिपटा हुआ था कि कोई भी उसे देख न पाया।

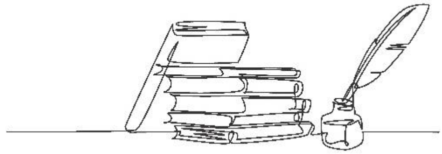

# वैलेंटाइन वीक

वैलेंटाइन वीक की आमद थी और इलाहाबाद के आशिक फिर गलियों में मंज़िल ढूंढने निकल पड़े थे — प्लेटफॉर्म नंबर एक से होते हुए यूनिवर्सिटी रोड की किताब गली, फिर कटरा, लक्ष्मी टॉकीज़ की चाय, आलोक भवन के कोने में फुलकी, और कंपनी बाग़ की धड़कनें।

चौक की तंग गलियों, जॉनसेनगंज की भीड़ और उस बूढ़े नीम के नीचे की चुगलख़ोर कहानियाँ — जैसे मोहल्ला अपने इतिहास को खुद सुनाता हो।

सुलाकी की दुकान की रसमलाई, सरस्वती घाट के सीढ़ियों पर बैठा इश्क, चुरमुरा और नाव से मिलता जीवन का फलसफा — सब कुछ इस शहर में प्यार की एक-एक परत की तरह था।

और जब पुल से ट्रेन गुजरती, तो वो तमाम तल्लीनताएं ताश के पत्तों की तरह बिखर जातीं।

इलाहाबाद कोई शहर नहीं, एक रूमानी अनुभव है — धर्मवीर भारती की तरह कहें तो, शायद किसी शायर के मन से ही फूटा था ये नगर। काश! ये प्रेम का त्योहार सिर्फ फरवरी में ना सिमटकर सालभर का उत्सव होता। लेकिन अब इस देवता की मूर्ति पर सियासत की कालिख पोती जा चुकी है। मोहल्ले की हर गली में कोई ना कोई ऐसे लोग मिल जाते हैं जो अपने मन का कचरा उठाकर उसे देशभक्ति की टोपी पहनाकर घुमा रहे हैं।

और बबली...

बबली भैया तो अब इश्क-वश्क से बुरी तरह खफा था। जब से उसकी दीदी का देवर दीवाना होकर अपनी बीवी को छोड़, उसकी दीदी को लेकर कलकत्ता भागा था, उसने प्रेम को अंग्रेजी बीमारी करार दे दिया था।

"प्यार-व्यार सब फालतू है चीज है ! सब मन का भूत है, औरत को बरगलाने का तरीका! और गोरों की चाल है।"

प्रेम माह के शुरू होते ही बबली भैया की सेना कुछ अधिक सक्रिय हो जाती, भगवा वस्त्र और हाथ में लाठी लिये ये प्रेम का विरोध करने निकल जाते जैसे - प्रेम पश्चिम की कोई चाल हो। प्रेम दिवस आते ही कुछ ठुकराये हुए प्रेमी भैया की सेना के नाम पर अपनी भड़ास निकाल लेते, प्रेम में ठुकराये हुए प्रेमी भी बेसब्री से प्रेम माह का इंतज़ार करते थे ताकि वो उस लड़के की पिटाई कर सकें, जिसके लिये वो ठुकराये गये है, क्योंकि प्रेम ना पाने के दर्द से बड़ा और असहनीय पीड़ा उसे किसी और के साथ देखना होता है। पम्फलेट और पोस्टरों से पाट दिए गए इस शहर का नीला आसमान जैसे ही गुलाबी रंग में हल्का सा धुंधला दिखता कि तभी कोई न

जाने कहां से आकर उस पर गेरुए रंग की मिट्टी उड़ेलने चला आता। शुक्र था कि यह शहर वकीलों का था, वरना ये मुस्टंडे गुंडे शायद ज्यादा उत्पात मचाते। पर, फिर भी प्रेमी जोड़ों के बीच ये लोग एक हल्का सा भय पैदा कर ही जाते थे।

प्रेम करने वालों को कौन रोक पाया है भइया! जब खुद ही खुद को रोक नहीं पाते, तो मोहल्ले वाले क्या रोक लेंगे? और वैसे भी, साइंस ने बोल ही दिया है—

"जिसे जितना दबाओगे, वो उतना ही उछलेगा!"

तो फिर खुशबू भी कहाँ पीछे रहने वाली थी। टॉपर थी, कॉन्फिडेंस में फुल चार्ज, सो सीधे स्कूल की गैलरी में जा के विवेक श्रीवास्तव को प्रपोज़ ठोंक दिया।

अब विवेक बेचारा किस्मत का मारा निकला। उसके हाथ में ग्रीटिंग कार्ड पकड़ाया गया और सामने खड़ी थी इलाहाबाद की अपनी खुशबू, लेकिन उसका दिमाग कहीं और उलझा था—आलोक बक्सी के नाम में। उसका भाई आलोक बक्सी... वो कोई लड़का नहीं, इलाहाबाद की लोकल 'रॉ' एजेंसी था। उसका नाम सुनते ही स्कूल के लौंडों की रीढ़ सीधी हो जाती थी।

खैर, विवेक ने डर के मारे कार्ड लेने से इनकार कर दिया। लेकिन खुशबू कहाँ मानने वाली थी!

गैलरी में खड़ी होकर, बाल उड़ते हुए, मुस्कुराहट हल्की टेढ़ी और आँखों में वो ही क्लास टॉपर वाली अकड़—वो फिर से बोली:

"अरे यार हम कौन कह रहे हैं शादी कर लो! दोस्ती तो कर सकते हो ना!"

विवेक, थोड़ा घबराया। इधर-उधर देखा, जैसे CCTV कैमरा लगा हो। फिर धीमे से बोला:

"ठीक है फिर... फ्रेंडशिप डे पर ग्रीटिंग देना!"

और बिना पीछे देखे निकल लिया।

"तुम साले लाला लोग पढ़ते-पढ़ते ही मर जाना!"

खुशबू की आवाज ऐसी गूंजी जैसे स्कूल में प्रिंसिपल नहीं, कोई इलाहाबादी रजिया सुल्ताना अवतरित हो गई हो। क्लासरुम से लेकर हैंडपंप तक सब हिल गया—एक सेकेंड को ऐसा लगा जैसे बोर्ड एग्ज़ाम कैंसिल हो गया हो।

ये सुनते ही उसकी सहेली सौम्या, जो क्लास में हमेशा बैकबेंच पर अपनी डायरी में 'सौम्या शर्मा मयंक सिंह' लिखती रहती थी, दौड़ती हुई बाहर आ गई।

"क्या हुआ बे? चिल्ला काहे रही हो ऐसे जैसे स्कूल की कैंटीन में समोसे खत्म हो गए हों?"

खुशबू भुनभुनाते हुए बोली,

"अबे ये लड़के लोग हमसे इतना दूर काहे भागते हैं?"

चेहरे पर नाराज़गी थी, पर आँखों में अब भी थोड़ी उम्मीद बसी हुई थी— जैसे स्कूल की आख़िरी बेंच पर रखा प्रैक्टिकल फाइल अब भी पूरा हो सकता है।

सौम्या हँसी रोकते हुए बोली,

"टॉपर हो ना... डरते हैं बेचारे! कहीं तू पूछ ले 'चैप्टर 6 का क्वेश्चन 3' या फिर बोल दे —'Fe का फुलफॉर्म बता', तो बेचारों की तो फेफड़ों से हवा निकल जाए!"

इतना कहते ही वो खुद हँसी के मारे दोहरी हो गई।

खुशबू ने झपट्टा मारा,

"अबे रुक कमीनी...!"

पर सौम्या फुर्ती से बच गई, जैसे मोहल्ले की गिल्ली लेकर भागी हो।

गैलरी अब नोट्स और रिजल्ट की नहीं, उनकी हँसी की गूंज से बज रही थी।

कुछ दूरी पर, जहाँ गैलरी की लाइट थोड़ी मद्धम थी और CCTV का डर नहीं था, वहाँ खुशबू ने सौम्या को आखिरकार पकड़ ही लिया।

सौम्या कान में फुसफुसाई,

"अरे सुन न... ये विवेक एक नंबर का मुठियाबाज निकला! मास्टर ऑफ़ 'अपना हाथ जगन्नाथ'!"

खुशबू ठठाकर हँस पड़ी,

"मतलब खुद को ही प्रसाद बाँट रहा है बे?"

और फिर थोड़ी देर बाद दोनों ने मिलकर ज़ोर से ठहाका लगाया।

"ये तो वही बात हो गई जैसे कोई बोले—'पेड़ा खा रहे हैं, पर व्रत नहीं तोड़ रहे!'"

फिर खुशबू आँख मटकाते हुए बोली,

"तो फिर अपनी उँगली कौन सी— फेमिनिस्ट फातिमा से कम है भला?"

उसके इतना कहते ही दोनों की हँसी स्कूल की बाउंड्री वॉल से बाहर जाने लगी, जैसे इलाहाबाद की दो लड़कियाँ समाज के सड़े हुए संस्कारों पर हँसी का बम फोड़ रही हों।

"वही दूसरी तरफ उसके अब्बा के पास अब ईएमआई भरने लायक पैसे तो आने लगे थे,

पर बदले में दो-दो दुकानें संभालनी पड़ रही थीं। एक से घर चलता था, दूसरी से इज्जत।"

उनकी दिनचर्या अब ऐसी हो गई थी जैसे डबल शिफ्ट वाला कोई बेरोज़गार देवता—शुक्र था, छंगे हलवाई सीन्स 1857 जहाँ वो दोपहर तक बैठते और फिर कल्लू को दुकान में छोड़कर, अपने नए भेष के साथ अपनी नई दुकान की ओर निकल जाते।

रास भंडार में घुसते ही, सबसे पहले गुप्ता उसकी आबोहवा में रोमांस की एअर डालता। "यार, सिंपल है! एक फैन लगा, थोड़ा फ्रेगरेंस स्प्रे, और

बाकी सब फैन संभाल लेता।" यह कामबाण उपाय गोलू का सुझाया हुआ ही उपाय था।

काफी देर बाद, एक महिला दुकान में आई, उसकी आँखों में थोड़ी चिंता थी, मुँह बुर्के से ढंका हुआ था। वह संकोच करते हुए एक प्रोडक्ट की तरफ इशारा करती है। गुप्ता तुरंत समझ जाते हैं और मुस्कुराते हुए उसके पास पहुंचते हैं।

"क्या हुआ मैडम जी, क्या देख रही हो? यह नया 'ऑल-इन-वन' है, बिल्कुल आपके जैसे! इसे सिर्फ एक बार इस्तेमाल करिए, आपकी सारी समस्याएं हल हो जाएंगी!"

महिला थोड़ी घबराई हुई थी, लेकिन गुप्ता की आत्मविश्वास से भरी बातों के कारण वह शरमाते हुए हंसी रोकने की कोशिश करती है।

"क्या यह सही है?" महिला ने संकोच के साथ पूछा।

गुप्ता ने हल्की मुस्कान के साथ कहा, "सही है! देखिए, अपने आप से प्रेम करना कैसे गलत हो सकता है?"

फिर महिला थोड़ी हिचकिचाते हुए वह वस्तु उठा लेती है। सहसा गुप्ता को अपनी ही कही बात पर गर्व महसूस हुआ, "अपने आप से प्रेम करना कैसे गलत हो सकता है?" आखिरकार उसने तो सच ही कहा था।

ठीक उसी वक़्त दूकान में एक नकाब पोश आदमी घुसा। घुसते ही वो गुप्ता के पैरों पर गिर पड़ा। इससे पहले गुप्ता कुछ बोल पाता वो आदमी जिसका नाम भास्कर था किसी लाउड स्पीकर की तरह बज पड़ा। “पहले

सब हमें लवड़ भास्कर कहकर चिढ़ाया करते थे। क्यूंकि हमारी नुन्नी में दोष था। तलाक तक की नौमत आ चुकी थी। फिर जब से आपकी दूकान से सुखदंड और झनझनिया बॉस" लिया। रातों तो रात हमारी काया ही पलट गयी हम हमारी बीवी की नज़रों में लवड़ भास्कर से लव यू भास्कर बन गए।" ये सुनते ही काउंटर पर खड़ा, अपनी छाती को गर्व से फुलाए, गुप्ता शायद खुद को कामदेव का अवतार समझने लगा था।

आज उनकी दुकान का माहौल कुछ अलग था, जैसे कोई गहरी ताजगी छाई हो। दुकान में सेक्स टॉयज की सजी-धजी रैक्स पर बारीक धूल की परत भी जैसे उनके फख्र को बढ़ा रही हो। गुप्ता जी, अपने पुराने काले चश्मे में और पुराने रजाई के गहरे रंग में लिपटी शर्ट में, एक पिलर की तरह खड़े थे। लेकिन तभी, जैसे किसी तूफान ने आकर उनकी दुनिया में हलचल मचा दी, दो लड़कियां दुकान में घुस आईं। यह पहला अवसर था जब उनकी दुकान में बिना नकाब के कोई आई थी। गुप्ता जी का चेहरा इस अप्रत्याशित आगंतुकों से अचानक डर और असमंजस से भर गया। उनमें से एक तो उनकी बेटी की दोस्त सौम्या थी और दूसरी उनकी खुद की बेटी खुशबू। गुप्ता जी की धड़कनों की आवाज़ मानो हर जगह गूंजने लगी।

"आ... आ... तुम दोनों?" गुप्ता जी ने हड़बड़ाते हुए कहा, और फिर तेजी से पलट कर शीशे में अपने नकली दाढ़ी को ठीक करने लगे, ताकि दोनों उन्हें पहचान न सकें। वह थोड़ी देर के लिए उलझन में थे, जैसे किसी फिल्म के विलेन को ढूंढने की कोशिश कर रहे हों

सौम्या और खुशबू बिना किसी संकोच के दुकान के अंदर दाखिल हो गईं और हर चीज के बारे में गुप्ता से सवाल पूछने लगीं। अब गुप्ता जी की

छाती, जो अभी कुछ देर पहले कामदेव के गर्व से फुली हुई थी, जैसे मुरझा सी गई थी। अचानक, दोनों लड़कियों के हाथ में एक-एक वाइब्रेटर देखकर गुप्ता जी का सारा शरीर जैसे बिजली के झटके से वाइब्रेट हो उठा। सौम्या ने अपनी परवाह किए बिना सबसे पहले एक वाइब्रेटर उठा लिया और उसकी तरफ उंगलियां घुमाते हुए बोली, “यह क्या चीज है, गुप्ता जी?” गुप्ता जी ने डरते हुए अपनी गर्दन झुका ली, जैसे किसी अपराधी को पहली बार पकड़ लिया गया हो।

आदतन, गुप्ता जी ने मुस्कुराते हुए जवाब दिया, “अरे बेटा, यह तो... यह तो... मेडिकल उपकरण है, कुछ खास नहीं। यह डॉक्टर के पास भी मिलता है। हमारी दुकान तो स्वास्थ्य से जुड़ी हुई है, समझे?” उनका चेहरा एकदम घबराया हुआ था, लेकिन उन्होंने कोशिश की अपनी आवाज को स्थिर रखने की।

“वह ठीक है,” सौम्या ने वाइब्रेटर को पलटते हुए कहा, “लेकिन इसे यूज़ कैसे करना है?”

गुप्ता जी की घबराहट और बढ़ गई। उन्होंने सोचा कि किसी तरह से इन दोनों लड़कियों को इग्नोर कर दिया जाए। वह थोड़ा हिचकते हुए बोले, “बेटा, यह तो... महिलाओं के स्वास्थ्य के लिए है। और... बहुत सारी महिलाएं इसे अपनी सुविधा के लिए इस्तेमाल करती हैं।” वो अपनी बनावटी मुस्कान के पीछे अपनी आवाज की कंपकंपी छिपा नहीं पा रहे थे। सौम्या ने एक कुटिल मुस्कान के साथ और भी गहरी जिज्ञासा जताई, “फिर भी इसका सही इस्तेमाल कैसे किया जाता है?”

गुप्ता जी ने एक लंबी और ठंडी सांस लेते हुए कहा, “बेटा, यह... यह जो सामान है... यह सब बस महिलाओं के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए है। आपको इसे समझने की कोई जरूरत नहीं है, यह हम बड़े लोगों के काम की चीज़ है.”गुप्ता ने इतनी तेजी से कहा जैसे किसी ने उसके कान में Income Tax का नाम ले लिया हो। गुप्ता के लाख समझाने के बाद भी खुशबू और सौम्या वाइब्रेटर लेकर ही दुकान से निकली। गुप्ता के सुन्न शरीर से काम देव की आत्मा निकल कर रफूचक्कर हो चुकी थी।

खुशबू और सौम्या दुकान से बाहर निकलते हुए भी गुप्ता को ऐसे देख रही थीं जैसे कोई CID की टीम हो और गुप्ता दुकान में कोई संदिग्ध लिफाफा। कुछ मिनट बाद, उसने भी shutter गिराया और “आज दुकान जल्दी बंद” वाली अदृश्य तख्ती टाँग कर रफूचक्कर हो गया।

वो शाम बस गम से ज्यादा सदमें में डूबी हुई थी और गोलू की छत पर पनाह लिए बैठी थी। गुप्ता पेग के बाद पेग लगाए जा रहा था, नशा था कि चढ़ने का नाम ही नहीं ले रहा था। गोलू और सुनीता गुप्ता के बोलने का इंतजार कर रहे थे, लेकिन वह था कि गुमसुम, बस शराब पिए जा रहा था।

"अबे भइया, हम त अब ई काम छोड़ रहे हैं। हमसे नाहीं देखा जात अब! आँख भर-भर के ग्लानी आती है!" गुप्ता गुस्से में बड़बड़ाते हुए बोला।

“बताओगे कि आखिर हुआ क्या है?” गोलू ने चिढ़ते हुए पूछा।

"हुआ का है पता है? जे गंदगी जेकरे सफाई खातिर हम लड़ रहे थे, अब उई हमरे ही घर घुस आई है। आज हमरी बिटिया खुद अपने एक दोस्त के साथ श्री दुकान पहुँची और बोल पड़ी कि डिल्डो अच्छा होत है या

वाइब्रेटर?” गुप्ता की बात सुनते ही गोलू और सुनीता ने पहले एक-दूसरे की तरफ देखा, फिर गुप्ता के लटकते चेहरे की ओर।

“तुम्हें पता है, भारत में हर साल कितने नवजात शिशुओं को कचरे में फेंक दिया जाता है?” गोलू की बात का गुप्ता ने कोई जवाब नहीं दिया। गोलू ने फिर से कहा,

“कम से कम वो कोई नाजायज संबंध तो नहीं बना रही। और मुझे लगता है कि वह अब उस उम्र में है जब वह अपने शरीर को समझना चाहती है। हमारे देश के माता-पिता के साथ यही दिक्कत है कि वे सेक्स शब्द से ही घबराने लगते हैं। तो ऐसे माहौल में क्या सेक्स एजुकेशन देना मुमकिन है?” गोलू की बात सुनते ही गुप्ता थोड़ी देर के लिए एक गहरी सोच में पहुंच गया। शायद गोलू की बात समझने के लिए उसके चक्षुओं का द्वार अभी तक खुला नहीं था।

रात का समय, ठंडी हवाएँ और चुप्प का सन्नाटा धीरे-धीरे गहरी हो रही थी। गुप्ता एक पूरी बोतल गटकने के बाद भी पूरे होश में पैदल अपने घर की ततफ चला जा रहा था। वो अपने जीवन में एक अजनबी किस्म की समझ को महसूस कर रहा था। गोलू और सुनीता की बातें उसके अंदर नई सोच जगा रही थी। अब उसे यह समझ में आ रहा था कि न केवल उसे अपनी बिटिया को, बल्कि इस समाज को भी अपनी सोच को बदलने के लिए तैयार करना होगा।

लेकिन जब वो अपने घर की दहलीज पर कदम रखते हैं, तो एक अजीब सा परिवर्तन हुआ। उनका पुराना भारतीय बाप जाग उठा। सबसे पहले, जैसे आदत हो, उन्होंने खुशी से पूछा, "खुशबू कहाँ है?"

नीता, जो उस वक़्त आँगन में खुरचन वाली कड़ाही में पानी डाल रही थी ताकि सुबह तक चील भी न चाट सके, बेमन से बोली —

"अपने कमरा मा घुसी पड़े जात है... का रामायण घोंट रही है, समझे मा नाहीं आवत!" गुप्ता साहब, जो पहले थोड़ी सी गंभीर मुद्रा में थे, अब थोड़े और कठोर हो गए। "खाना लगाओ," उन्होंने नीता से कहा, और फिर आंगन में रखी तखत पर बैठ गए।

इतने में खुशबू कमरे से निकली और बाथरुम में घुस गई।

गुप्ता जी की निगाह ऐसे चिपकी जैसे CCTV कैमरा हो —

और जब दरवाजा कुछ देर तक नहीं खुला, तो उनके भीतर का जांच अधिकारी जाग गया।

"अरे ओ बिटिया... जल्दी बाहर निकल, पेटवा गड़बड़ाय ग अहै!"

ग़लतफ़हमी में इंसान मुँह से कुछ भी कह देता है —

पर गुप्ता जी तो जैसे पेट के बहाने से बेटी की आदतों की एक्स-रे रिपोर्ट बनाना चाहते थे।

नीता, जो पहले से खाना लेकर आई थी, चौंकी और बड़बड़ाते हुए बोली,"अरे, अभी तो कहत रहे कि खाना परसो, अब बोलत हौ पेट खराब है? तबियतिया ठीक बा कि नाहीं?"

गुप्ता ने नीता की बात को अनसुना करते हुए सिर झुका दिया और फिर से चिल्लाने लगे, "खुशबू बिटिया, जल्दी से निकलो, जल्दी! पेट खराब हो गया!"

खुशबू बड़बड़ाते हुए बाथरूम से बाहर निकली। "क्या यार, पापा?" उसने मुंह चिढ़ाते हुए कहा और फिर वाशबेसिन में अपने हाथ धोने लगी। गुप्ता उसकी तरफ शक की निगाहों से देख ही रहे थे कि नीता ने एक झल्लाई हुई आवाज में चिल्लाया, "जाओ जल्दी, अब नहीं छूट रही टट्टी तुम्हारी!"

गुप्ता, नीता की बात सुनते ही चौंक गए और एकदम बाथरूम की तरफ बढ़े। उन्हें ऐसा लगा जैसे उनका शक अब पक्का हो चुका हो। बाथरूम में घुसते ही, वो किसी सीआईडी के कुत्ते की तरह सब कुछ खोजने में जुट गए। हाँ, उनकी सोच के मुताबिक, शायद यहाँ कुछ गड़बड़ है, कुछ ऐसा जो उनकी बेटी ने अंजाम दिया होगा। उन्हें यह पक्का यकीन था कि खुशबू शायद कुछ ऐसा कर रही है, जिसे घर में किसी को नहीं पता चलने देना चाहिए था।

गुप्ता साहब ने बाथरूम में हर जगह नजर दौड़ाई, लेकिन कुछ भी नहीं मिला। बाथरूम के भीतर कुछ भी अव्यवस्थित नहीं था, न कोई कागज, न कोई छोटी सी चीज जो उनके शक को पक्का कर सके। इसके बावजूद, गुप्ता साहब का दिल नहीं मान रहा था।"कुछ त गड़बड़ बा," वह खुद से बड़बड़ाते हुए बाथरूम से बाहर आ गए।

शाम की चुप्प और रात की सर्दी धीरे-धीरे गहरी हो रही थी। गुप्ता साहब अपने कमरे में लेटकर आंगन की तरफ देखते रहे, बाथरूम की निगरानी करते हुए। उनका दिमाग लगातार दौड़ रहा था, और उनकी आँखों के सामने सिर्फ एक सवाल था –"का ई खुशबू वाकई मा कुछ करि रही है?"

खुशबू अपने कमरे में पढ़ाई कर रही थी, लेकिन गुप्ता के लिए यह सब कुछ एक रहस्य था। उसे एक अजीब सी चिंता हो रही थी। क्या उसकी बेटी ने वाकई कुछ ऐसा किया था, जिसे वो नहीं समझ पा रहे थे? क्या वह उस रहस्य को समझने में नाकाम हो रहे थे?

नीता, जो कि पहले से गुप्ता के इस व्यवहार से चिढ़ चुकी थी, उनके पास आई और कहा, "काहे जी, अबहियों कछु टटोलत हउआ का?"

गुप्ता ने बस एक गहरी साँस ली और बिस्तर पर लेट गए। नीता की बातों का जवाब उन्होंने नहीं दिया। वो अब भी परेशान थे, अपने दिमाग में झंझावात और सवालों की भीड़ के साथ।

खुशबू का चेहरा, उसकी आँखें, उसका वो अलसाया सा 'हाँ पापा' कहने का अंदाज़ — सब कुछ गुप्ता जी के दिमाग में ऐसे घूम रहा था जैसे पुराना इंटरनेट वाला ब्राउज़र, जो एक बार लोड होने लगे तो बंद ही नहीं होता।

"का हमही बेवकूफ हैं? या वाकई बिटिया कुछ छुपा रही है?"

मन और मस्तिष्क की लड़ाई में हार हमेशा पिता की समझदारी की होती है। और गुप्ता जी, जो कल तक बेटी की टॉपर मार्कशीट को फेसबुक पर डालकर गर्व से कहते थे — "बिटिया पढ़-लिख के अफसर बनेगी",

अब उसी बिटिया को बाथरूम के टाइमिंग से जज कर रहे थे।

रात गहरी हो गई थी, पर गुप्ता जी की जासूसी जारी थी।

बाथरूम की तरफ उनकी निगाह ऐसे थी जैसे वो बाथरूम न हो, कोई पाकिस्तानी बंकर हो।

"का हमरे घर में भी ये सब शुरू हो गया है?"

ये "सब" क्या है, उन्हें खुद भी ठीक-ठीक पता नहीं था।

पर जिसे बाप की चिंता कहते हैं, वो अकसर बिना प्रमाण के भी सजा सुनाता है।

सुबह की हवा में हल्की ठंडक थी,

पर गुप्ता जी के माथे पर कल की रात का पसीना अब तक जमा था।

इलाहाबाद की गलियाँ अभी भी उनींदी थीं, जैसे अलार्म तो बजा है, पर उठने का मन नहीं।

नीता चूल्हे पर चाय चढ़ा रही थी —

कम बोलती थी, पर जब बोलती थी, तो सीधे ललाट पर तीर लगता था।

“अब पेट ठीक है न?”

नीता ने बिना देखे, बिना हँसे, एकदम यमराज के जैसे पूछ लिया।

गुप्ता जी ने चाय की पहली फूँक ली,

फूँक थोड़ी लंबी थी —

जैसे हर जवाब सोच के देना हो।

“हां... अब आराम है।”

फिर कुछ याद आया — एकदम वैसे जैसे किसी को याद आता है कि लॉटरी का टिकट चाय के डिब्बे में रखा था।

“आज मंगलवार है क्या?”

गुप्ता जी ने सवाल पूछा जैसे कोई राज खोलने वाला हो।

"हँय! कौनो शक बा का? देखत नाहीं हो मोहल्ला कइसे सन्नाटा पसरे पड़ा है?

अगर मंगल का दिन न होता, त बगल वाले दुबे जी का ऊ न्यूज़ वाला लौंडा टीवी पर चिचियात होत —

'देश टूट गवा, लेकिन हमार रिपोर्टर की कमीज़ सलामत बा!'"

नीता ने इतना कहा और बर्तन धोने के बाद वही गीला पल्ला कमर में फँसाते हुए फिकरा कसा।

गुप्ता जी ने अपनी चाय इस अंदाज़ में गटकी जैसे टीटी प्लेटफॉर्म पर दिख गया हो और उन्हें टिकट भी याद न हो।

कुछ बोले नहीं।

बस उठे।

और वही पुराना हिकारत भरा अनुशासन अपनाते हुए अलमारी की तरफ बढ़े —

जहाँ मिठाई के टीन के डिब्बे ऐसे सजाए रहते थे जैसे राष्ट्रवादी विचार: दिखने में चमकदार, अंदर से बासी।

एक-एक कर डिब्बे निकाले और लूना के पीछे कस के बाँधने लगे।

जैसे अपने-आप से कह रहे हों —

“कम से कम ये डिब्बे तो सीधा चलते हैं, बच्चों की तरह नहीं।”

रोज़ का नियम था:

डिब्बे बाँधो, माथे पे बोरिंग गमछा कसो, और निकल पड़ो दुकान की ओर —

जहाँ ग्राहक कम, भक्त ज़्यादा आते थे और हर खरीदार पहले धर्म पूछता था, फिर रेट।

पर आज का दिन कुछ और था।

आज लूना की हैंडल पकड़ते वक़्त उनकी उंगलियों में संदेह था,

पाँव में झिझक थी और आँखों में वही चिंता जो बेटी का फोन छीनकर पढ़ने वाले बापों की होती है।

लग रहा था जैसे आज दुकान नहीं,

खुशबू की परवरिश की सीसीटीवी रिकॉर्डिंग देखने निकल रहे हैं।

जैसे ही गुप्ता जी ने लूना को किक मारी — धप्प! धप्प! — उनका मन हनुमान चालीसा में उलझा ही था कि सामने से साक्षात् सीआईडी अंकल प्रकट हो गए।

सीआईडी अंकल का असली नाम किसी को ठीक से याद नहीं था। बस इतना सबको पता था कि वे अपने संदेह की शक्ति से किसी के भी जीवन में तूफान ला सकते थे। पान चबाते हुए, आँखों को संकीर्ण करके, उन्होंने गुप्ता जी को ऐसे देखा जैसे कोई अपराधी चोरी के बाद पकड़ा गया हो।

सीआईडी अंकल ने गुप्ता जी को देखा —

ऐसे जैसे पूछना चाहते हों:

"कहाँ से आ रहे हो, और क्या छुपा रहे हो?"

गुप्ता जी के माथे पर पसीना चुहचुहा आया।

लेकिन लूना...लूना ने जैसे फ़ैसला कर लिया हो कि आज ये तमाशा लंबा चलेगा।

किक पे किक, पर आवाज़ नदारद।

एक बार तो गुप्ता जी ने हैंडल थपथपाकर कहा, "चालू हो जा पगली, बहुत इज्जत दांव पर लगी है!"

फिर क्या —

वो लूना को ऐसे धकेलते हुए निकले जैसे वार्ड के चुनाव में हार के बाद नेताजी मोहल्ले की गलियों से कन्नी काटते निकलते हैं।

सीआईडी अंकल की आँखें अब भी पीछे टिकी थीं।

गली के मोड़ से बाहर निकलते ही गुप्ता जी ने एक लंबी साँस ली।

इतनी लंबी कि लग रहा था पेट की हवा नहीं, ज़माने की टेंशन बाहर निकाली हो।

और तभी...

एक ही किक में लूना घर्र-घर्र करते हुए चालू हो गई —

जैसे कह रही हो, "अब डर खत्म, ड्रामा खत्म!"

कुछ ही देर में गुप्ता जी 'छंगे हलवाई एंड संस' की दुकान पर थे। इलाहाबाद शहर उतना ही बड़ा है जितना साइकिल की चेन, और उतना ही पुराना जितना उसके शायरों का दर्द। जैसा कि अकबर इलाहाबादी ने कहा—"कुछ इलाहाबाद में सामां नहीं बहबूद के..."—मगर छंगे हलवाई की दुकान इस कथन से अछूती थी। वहाँ बहबूद थी—लड्डुओं की।

छंगे हलवाई की दुकान वह तीर्थ थी जहाँ प्रसाद बिकता नहीं था, वितरित होता था—देवताओं के लिए, बहुओं के लिए, और बाबुओं के लिए।

वो लड्डू जो खाया नहीं जाता था, बस चढ़ाया जाता था—ऐसा कि खाते ही दांत चिपक जाए और चढ़ाते ही किस्मत।

कहते हैं, लेटे हुए हनुमान जी भी जब छंगे हलवाई का लड्डू देख लेते हैं तो एक बार "जय श्री राम" बोलकर उठ बैठते हैं।

दुकान के बाहर, जहाँ हर मंगलवार एक पान की पीक सूखती नहीं और बहस खत्म होती नहीं, वहीं चर्चा चल रही थी। रैंडम दुबे जी, जो हर मसले पर राय रखना अपने संसदीय कर्तव्य का हिस्सा मानते थे, मूंछ पर ताव देते हुए बोले—

"भइया, अगर चमत्कार देखना है तो छंगे का लड्डू चढ़ाओ। देखना, सरकारी फाइल बिना धक्का दिए खुदे चल पड़ेगी!"

सामने वाले ने बीड़ी सुलगाते हुए चुटकी ली—

"काहे बे, लड्डू में तंत्र-मंत्र मिला हुआ है का?"

दुबे जी ने ऐसे आँखें मटकाईं जैसे मनोज मुंतशिर कोई ऐतिहासिक तथ्य बता रहे हों।

बोले—

"तंत्र नहीं त तो और का है? देखो न, पिछली हफ्ता चौबे जी का लौंडा बेरोज़गार घूम रहा था...

लड्डू गया हनुमान जी के चरणों में, और अगले दिन बैंक का जॉइनिंग लैटर हाजिर! अब तुम ही बताओ—सरकारी नौकरी और भगवान—दोनों एक साथ मिल जाएं, इससे बड़का चमत्कार और का होई?"

पीछे से किसी ने ठहाका लगाया—

"ई बताओ, चढ़ावा लड्डू होता है या रिश्वत का डिजिटल वर्जन?"

दुबे जी ने मुस्कुरा के जवाब दिया—

"भइया, इसको 'आस्था आधारित इन्वेस्टमेंट' कहते हैं।"

उसी बीच गुप्ता जी दुकान में घुस चुके थे। देर से आए थे, तो गद्दी पर कलुवा विराजमान था—यानी आज दुकान का लोकतंत्र चल रहा था।

गुप्ता जी ने कलुवा को देखा, उस नज़र से जैसे कोई रिटायर्ड बाबू किसी जूनियर को देखकर सोचता है—"अब तू ही देश का भविष्य है बबुआ!"

पर कलुवा कुछ चिढ़ा हुआ लग रहा था। पसीने से भीगा गमछा उसकी हालत बयान कर रहा था।

"मालिक," वो बोला, "अब तो ई दुकान पर आप मंगलवार ही आते हैं। सब ठीक है न?"

गुप्ता जी बस मुस्कुरा दिए, वो भी ऐसे जैसे मन ही मन कह रहे हों—"सब ठीक है... बस आत्मा मर गई है थोड़ी।" बोलने के बजाय उन्होंने सीधा प्रसाद के पैकेट बाँधना शुरू कर दिया। हाथ ऐसे चल रहे थे जैसे टाइम बम का तार काट रहे हों—सटीक, जल्दी, बिना एक्सक्यूज़ के।

आज उन्होंने मन ही मन तय किया कि मंगलवार को 'रास भंडार' नहीं खोलेंगे। कलुवा की थकी आँखों में शायद उन्हें वह श्रम दिखा जो कभी उनके भीतर हुआ करता था।

बाहर का माहौल अलग ही तापमान पर खौल रहा था।

रैंडम दुबे, मोहल्ले का स्वघोषित 'संस्कारी क्रांतिकारी', अपने मूंछों में देश का भविष्य खोज रहा था और लड़कों की भीड़ को ज्ञान बांटे जा रहा था:

"जो वीर्य बचाएगा, वही वीर कहलाएगा! हनुमान जी को देखो—शुद्ध ब्रह्मचारी! तभी तो वानर सेना के कप्तान बन गए!"

वही दूसरी तरफ बीती रात वीर्य जल्दी निकल जाने के सदमे से ग्रसित गमझा लपेटे चेहरे आपस में मिनमिना रहे थे। अपनी पहचान गमछे से छुपाये लुक़मानी दवा खाने की बेंच पर अपनी बारी आने का इंतज़ार कर रही थी।

"सुनन मा आवा है कि इहाँ बड़े-बड़े नेता लोग अपने इलाज करावे खातिर आवत हैं।" नीले गमछे में लिपटे एक चेहरे से आवाज़ आयी।

"अरे, जौने तुम सुन लिहे हो ऊ त ठीक है, लेकिन जौने नाहीं सुने हउव, अब उ भी सुन लो।" बेंच में बैठे एक हेलमेट पहने शख्स ने जवाब में कहा।

"इलाहाबाद मा त हर बात चौमुहानी चौराहा तक पहुँचे है। अब ई कौन सी खबर है जौ हम नाहीं सुने?"नीले गमछे में लिपटे चेहरे ने दुबारा पूछा।

"अच्छा त फिर बताव, जादुई झुनझुना के बारे मा का जानते हउआ?" हेलमेट पहने शख्स दुबारा बोला।

" जादुई झुनझुना ?" नीले गमछे में लिपटे चेहरे ने हैरानी के साथ पूछा।

काहे भइया... झुनझुना गइले? अरे असली बात पता चलिहै न, तब अउरो झुनझुना जइबा!" हेलमेट वाले थोड़ी हेकड़ी भरी आवाज में कहा। तभी बेंच बैठे एक और आदमी से जब रहा न गया तो वो बोल पड़ा।

"अरे यार भइया, ज़्यादा फुटेज मत खाओ। बताय द ना, नाहीं त अभी सब झर जइहैं। इहाँ सब शीघ्रपतन के इलाज खातिर आए हैं — इत्ते देर

तक रुका नाहीं जाई इनसे!" उस शख्स के इतना बोलते ही उस पुराने गोदाम जैसे दवा खाने के बेंच में बैठे रोगियों में हंसी ठहाके लग गए।

"अरे भइया, ई बात मामूली नाहीं है — ई चाइनीस यंत्र है! समझो तो अइसै जैसे कउनो गाँव के बाबा के लगे जादुई छड़ी हो! सोचो, अगर ऊ झुनझुना तुमरे हाथ लग गवा, त समझो कामदेव खुद तुमरे भीतर घुस के नाच उठिहैं! तब ई शीघ्र पतन वाला झंझट कब दीर्घ उत्थान मा बदल जाई, तुमका पता भी न चली!"

विज्ञान की इस बेमिसाल यन्त्र के बारे में सुनकर एक बार फिर उस गोदाम जैसे दिखने वाले दवाखाने में बैठे मरीजों में हंसी के ठहाके गूंज उठे, जैसे सभी को आभास हो गया हो कि जो इलाज इन्हें दिया जा रहा है, वह असल में किसी मजाक से कम नहीं। जैसे ही यह बात फैली, लुक़मानी की दवाओं पर शक की लहर दौड़ गई।

"साल भर हो गया सरकार, पर हकीम साहब की दवा का तो कोई असर दिखे तब न! जबलपुर से आना-जाना ही इतना भारी पड़ रहा है कि कभी-कभी तो लगता है ट्रेन की छत पे बैठ के सीधा हिमालय निकल लूँ, जाके समाधि ही धर लूँ!"

ये आवाज़ नहीं थी, ये एक ऐसा भूतहा अनुभव था जो लाल मफलर में लिपटी खोपड़ी से निकला और बाकियों के दिलों के जले हुए तार छेड़ गया।

एक ने कहा, "हम त पूरे दुई साल से दवाई चबाए जात हई!"

दूसरे ने कहा, "हम त पूरे पाँच बरिस से इलाज करावत हईं! अब त दवाई लेइत ही मुँह से ‘ओम नमः शिवाय’ उचरत है!" किसी ने मुँह बिचकाते हुए कहा, "हमारी तो बीवी भी भाग गई, लेकिन अभी तक नुन्नी में जान नहीं आई!" हर कोई अपनी नाराज़गी और फ़्रस्ट्रेशन की लकीरें हकीम पर छोड़ता जा रहा था। अब माहौल ऐसा बन गया था जैसे OPD नहीं, कोई भूतपूर्व प्रेम दोषियों की पंचायत हो रही हो—सब अपने अपने ग़मों के संदूक खोल-खोल के हकीम के नाम पर पटकने लगे। अंदर से तो हर कोई टूटा-फूटा था, लेकिन बाहर से सब ऐसे मूँछ ताने बैठे थे जैसे जिंदगी इनके ही हिसाब से चल रही हो। तभी किसी ने लवड़ भास्कर की बात छेड़ दी—बस फिर क्या, महफिल उसी की 'लव यू भास्कर' वाली कथा में डूब गई।

कुछ ही पल में बाहर हो रही खुसर-फुसर की आवाज़ें हकीम साहब के कानों में घुस गयीं और जैसे ही वो अपने केबिन से बाहर निकले, उनकी आंखें ऐसी थीं जैसे किसी के गालों पर गर्म तवा रखा हो। मुंह से आग उगलते हुए बोले, “अरे भैया आप लोग तो इलाहाबादी है। संगम में डुबकी लगा लेंगे तो सब बीमारी दूर हो जायेगी। तो फिर हमारे पास आने की क्या जरूरत है।”

हकीम साहब के इतना बोलते ही मरीजों के बीच सन्नाटा फ़ैल गया। पर वो इतने में कहाँ चुप रहने वाले थे बात उनकी साख पर आ गयी थी। बोले, “तुम लोग ऐसे ही अपनी नामर्दगी छिपाओगे तो एक दिन तुम लोगन की कौनों जरुरत न पड़ी औरत समाज को। फेमिनिज्म फ़ैल रहा है हर तरफ। पता है कि नाही ? तुम्हारा औज़ार किसी काम नहीं रह जायेगा, अगर ये जादुई झुनझुना इन औरतों के पास पहुंच गया तो ?”

इतना सुनते ही मरीजों में से एक ने दूसरे से फुसफुसाकर पूछा,"ई फेमिनिज़मवा का होत है भइया?"

दूसरे ने माथे पर हाथ रखते हुए कहा, "अब फैलत है त कौनो बीमारीए होई! जैसे हैजा-मलेरिया पसरे है, ओइसही ई भी!"

पहला बोला, "हँय! तभे त हकीम साहेब इतने खिसियाए पड़े हैं!"

बैकग्राउंड में हक़ीम अब भी चिल्ला रहा था। सब कुछ शांत हो चुका था और हक़ीम अपनी केबिन का दरवाजा पटकते हुए अंदर घुस गया। अब बारी थी कम्पाउंडर की, जो कुछ यूं बोला, "अरे भइया, इहाँ त बड़े-बड़े नेता, वकील-बहसी बैठत हैं। पिछली बेर त हकीम साहेब खुद सांसद जी से उलझ ग रहे रहेन!"

“फिर ?” बेंच की तरफ से आवाज़ आयी।

"फेर का? कुर्सीवा चली गई!"  कम्पाउंडर ने जवाब में कहा। "जाओ अब, अबहिंया तोहरे नंबर है। अउर हाँ! जेतना पूछैं, ओतने बोलियो, नाहीं त तुमहूँ डाँट खाइ के अइब्या!"

मरीज मुँह क तरफ बिदकाते हुए बोला "हँय! मर्दानगी पर अइसन श्राप लग गवा है कि बीवी अउर डाक्टर, दुनो से डाँट खाय के नउबत आ गई बा!"

उस शाम जब गुप्ता जी अपनी गली में मुड़े, तो उनके भीतर कुछ अजीब-सा खदबदा रहा था — जैसे पेट में गैस नहीं, बल्कि सोचों का बवंडर उठा

हो। सीआईडी अंकल का चमगादड़ नुमा शक वाला लुक अब भी उनके दिमाग में घूम रहा था, जैसे पुराने टेप रिकॉर्डर में अटक गया हो।

घर में घुसते वक्त उन्होंने चेहरे पर वो हँसी चिपकाई — जब समझ कुछ नहीं आता, तो बस आधुनिक दिखना ज़रूरी लगता है।

आँगन में खुशबू नीता के साथ खोए की कड़ाही में भिड़ी हुई थी — जैसे पढ़ाई से ज़्यादा चिंता अब लड्डू की साख की थी।

गुप्ता जी ने खुद को बार-बार समझाया,

"बिटिया बड़ी हो गई है। जमाना खुला है। सेक्स के बारे में जानना अब गुनाह नहीं रहा।"

पर फिर अंदर से एक पुराना गुप्ता खाँस पड़ा—वही जो हर बार कंडोम के ऐड पर चैनल बदल देता था।

असल परेशानी ये नहीं थी कि बिटिया को कुछ पता है... परेशानी ये थी कि उसके पास अब भी वो डिलडो पड़ा है—जिसका नाम लेने से उनके मन की कंठी गर्म पड़ जाती थी।

रात को बिस्तर पर गुप्ता जी करवट बदलते रहे। पंखे की फूँक जैसे कोई पुराना बाबू समझा रहा हो—

"बोल दो, नीता से बोल दो... कि बिटिया को थोड़ी सेक्स शिक्षा दे दें... आज के ज़माने में ये जरूरी है..."

पर जब भी मुँह खोलते, गला सूख जाता।

शर्म ने उन्हें जकड़ रखा था, और संस्कारों ने जैसे जुबान पर निम्बू मिर्ची बांध दिया था।

नीता करवट बदल चुकी थी, नींद में खर्राटे भी शायद इलहाबादिया लय में चल रहे थे। गुप्ता जी बस पंखा देखते रहे —

वो भी तो रुका था, जैसे पूछ रहा हो:

"बोलोगे? या फिर हर बार की तरह चुपचाप सो जाओगे?"

"बच्चन कब बड़े होइ जात हैं, पताइ नाहीं चलत!"

गुप्ता के मुँह से अनायास निकला। गुप्ता बस किसी तरह बात शुरु करना चाहता था ताकि वे असल मुद्दे पर आ सकें। दिनभर की थकी नीता आधी नींद में पहुँच चुकी थी।

"सो जाओ! उ त हमही जानत हईं कि बच्चन के बड़ा करत-करत का-का झेलना पड़ा हमका!" नीता ने अधूरी नींद में चिड़चिड़ाते हुए कहा।

"हमका लागत है अब खुशबू बड़ी होइ रही है, अउर तोहका अब ओकर संग थोड़ा जियादा समय बितावे के जरूरत बा," गुप्ता की आवाज़ में हिचकिचाहट साफ़ सुनी जा सकती थी। कुछ देर बाद नीता की तरफ से कोई जवाब न पाकर गुप्ता फिर बोले,"हमार मतलब ई रहा कि बिटिया अब जवान होइ रही है, बहुते बातन हैं जउन शायद तू ही सही से समझा सकत हउव ओकरा।"

फिर गुप्ता पूरी ताकत लगाकर बोले,"स-स-स्स्स्से... सेक्स ए-ए-एजुकेशन... अरे हमनी त मॉडर्न माई-बाप हई न!" वे पूरी बात बोल भी नहीं

पाए थे कि नीता ने करवट उनकी तरफ ले ली और गुप्ता की तो जैसे सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई।

"जवान होत लइकी कच्चा घड़ा जइसन होईला," गुप्ता ने बड़ी हिम्मत बाँधते हुए दुबारा कहा।

"सो जाओ चुपचाप, नाहीं त बताइ दें कि स-स-सेक्स एजुकेशन के ज़्यादा जरूरत आखिर किसे बा!"

इतना कहते ही उसने वापस करवट दूसरी ओर ले ली और अपनी पीठ की तरफ से दोबारा बुदबुदाते हुए बोली,"हमका त ईयो याद नाहीं कि तोहार अलादीन के चिराग आखिरी बेर कब रगड़ा गइल रहा। अब त सर्दियन मा भी तोहरे शरीर से अइसन अमोनिया के महक आवे लागल बा, जैसे नाली मा नगर पालिका वाला कीटनाशक छिड़क ग रहल हो!" गुप्ता का जैसे मुँह ही बंद हो गया। रात भर गुप्ता की आँखें बाथरूम की जैसे निगरानी करते करते कब झपक गयी उसे पता ही चला। भारतीय माँ-बाप होना कोई आसान बात नहीं है। सेक्स एजुकेशन! अरे भई, ये शब्द सुनते ही हमारे भारतीय माँ-बाप ऐसे चौंकते हैं जैसे किसी पंडित ने मंदिर में ‘व्हिस्की’ खोल दी हो। माँ तुरंत चप्पल निकाल लेती है और बापू अख़बार में मुँह छुपा लेते हैं — "ये सब बातें ग़लत संगत की देन हैं! हमारे ज़माने में तो..." — अब यही तो प्रॉब्लम है कि जनाब, आपके ज़माने में तो चिट्ठी भी कबूतर से जाती थी, अब बच्चे फेसबुक पर सेक्स से जुड़े मीम बना रहे हैं!

हमारे देश में बच्चे को जन्म देना इतना आसान है जितना उसे इसके बारे में समझाना मुश्किल।

सेक्स! ये ऐसा टॉपिक है, जो घर की चौखट पर सख्ती से बंद रहता है, पर गली-मोहल्ले की चाय-चुस्की में हर वक्त टॉपिक नंबर वन बना रहता है। माँ-बाप के दिमाग में बैठा हुआ है कि अगर बच्चे को “शरीर का क्या मतलब है”, “कन्सेंट का चक्कर क्या है”, या “सेफ सेक्स का फंडा क्या है” समझा दिया, तो बेटा डॉक्टर-इंजीनियर नहीं, कहीं कोई रोमियो बन के घूमेगा।

स्कूलों में सेक्स एजुकेशन इस कदर पढ़ाई जाती है जैसे कोई फोरेंसिक टीम बम डिस्पोज कर रही हो। टीचर आते हैं, बोर्ड पर ऐसे घुमा-फिरा के गोलमोल जुमले लिखते हैं कि समझो बच्चों को सिरदर्द हो जाए। फिर क्या, डांट-फटकार लगाते हुए कह देते हैं—“इसे घर पर मत पूछना!”

घर पर पूछो तो माँ कहती है – "रसोई में आलू-टमाटर देखो, ये सब फिल्मी बातें हैं!" और पिता जी ऐसे भागते हैं जैसे बच्चे ने लोन मांग लिया हो! हमारे समाज में सेक्स को लेकर ज्ञान देना पाप है, लेकिन अनपढ़ रहकर गलती करना पुण्य!

सुबह के पांच बज चुके थे, पूरा घर जैसे अपनी-अपनी दुनिया में खोया पड़ा था। खुशबू के पास वाले पलंग पे आलोक भी ऐसे सोया था जैसे कोई ग्राम प्रधान चुनाव जीत के सरकारी दौरे के बाद होश खो चुका हो।

तभी, जैसे सरकारी दफ्तर में रिश्वत लेते बाबू के पाँव की हलकी आहट होती है, खुशबू ने अपने कमरे का दरवाजा धीरे-धीरे खोला और बाहर निकल आई।

उसके हाथ में वह वाइब्रेटर नई कार के हेडलाइट-सा चमक रहा था। उस चमकती रोशनी में उसका उतावलापन सूखे मौसम में किसान के चेहरे पर उमड़ते बादलों की उम्मीद का प्रतिबिंब था।

खुशबू पंजों के बल मटर-चोर की चाल से चुपचाप बाथरूम में घुसी। पर उस अधमरी लकड़ी के दरवाज़े से बूढ़ी बैलगाड़ी-सी कराह निकली और गुप्ता की नींद टूट गई। वह ऐसा चौंका मानो पंचायत की मीटिंग के बीचोंबीच किसी ने उसके भ्रष्टाचार का ज़िक्र छेड़ दिया हो।

सुबह की पहली किरण खिड़की से झाँक रही थी, और गुप्ता सोच में डूबा था - क्या यह सब सच था या उसकी आँखों का धोखा था? वो दौड़ कर बाथरूम की तरफ भागा पर यहां कोई नहीं था। वो लौट कर खुशबू के कमरे में गया जहाँ खुसबू को देख उसे  यकीन हो गया कि वो सपने में था।

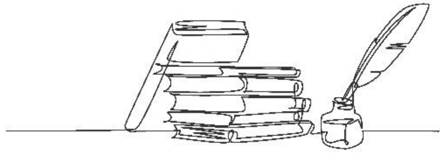

# लुक़मानी दवाखाना

उस दिन गुप्ता दुकान पर एक नए इरादे के साथ पहुंचा। दुकान के सामने से गुजरते लोग अपनी नजरें चुराते हुए तेजी से आगे निकल रहे थे। उसने तय कर लिया था कि अब वह खुलकर लोगों को उन चीजों के बारे में बताएगा जिन्हें लोग अपने खयालो में छिपाकर रखते हैं। **शायद उसे समझ आ गया था कि वासनाओं को स्वीकार करने में ही उनकी मुक्ति है, जैसे कोई कैदी अपनी जंजीरों को गले लगा ले।** पीछे से मंदिर की घंटियों की आवाज आ रही थी, जैसे इस पाप के मेले पर भगवान का आशीष हो। हर तरफ वो चीजें थीं जो इंसान को खुद से प्यार करना सिखाती हैं। बाहर से गुजरते लोग चोरी-छिपे अंदर झांकते, फिर शर्म से लाल होकर तेजी से आगे बढ़ जाते। औरतों के लिए जादुई झुनझुना था तो मर्दों के लिए गुप्त गुदगुद। फिंगर मसाजर, वाइब्रेटर, डिल्डो, जी स्पॉट वाइब्रेटर से लेकर बट प्लग, टो कफ, हैंड कफ, भड़कीले कपड़े - गुप्ता की दुकान अब ऐसी चीजों का अजायबघर बन गई थी। बगल की चाय की दुकान से लोगों की फुसफुसाहट सुनाई दे रही थी, "अरे वाह! हमारे यहाँ तो साक्षात कामदेव

प्रकट हो आये है !" शाम ढलते-ढलते, जब आसमान लाली से भर गया, गुप्ता ने देखा कि उसकी दुकान के सामने भीड़ जमा हो गई थी। लोग शर्म और उत्सुकता के बीच झूल रहे थे, जैसे किसी ने उनकी आंखों पर से पर्दा हटा दिया हो।

शाम का वक्त था और गोलू ने अपने पुरानी आदत के अनुसार रास भण्डार का रुख किया। "और गुरु, स्टॉक है या और मंगाए?" वह घुसते ही काउंटर पर जा बैठा, जैसे यह दुकान उसका ही घर हो। गुप्ता ने दाढ़ी को शीशे में सजा कर ताना मारते हुए कहा, "कितनी बार समझाए हैं रे, मुँह ढँक के आया कर! नाहीं त तोहरे चक्कर मा एक दिन हमहीं पकड़ा जइब!"

गोलू ने ठहाका लगाते हुए जवाब दिया, "अरे, हमका मुँह छिपावे के काहे जरूरत बा! हम बनिया जात के आदमी हईं — अगर हम मुँह छिपाएंगे, त खइब क्या, कमइब का? दुकानदारी मुँह से ही त चमकत है भइया!" गुप्ता ने आँखों में चिढ़ भरकर कहा, "बनिया हम हईं कि तू?"

गोलू ने मुस्कुराते हुए उसकी दाढ़ी खींचते हुए कहा,"त फिर बनिए जइसन दिमाग लगावा कारोबार मा! बनिया करम से बनत है, जात-पांत से नाहीं! बूझे कि नाहीं, ठलुए?" गुप्ता ने हाथ झटकते हुए कहा, "अब त लागत है कि अगले जनम मा आके ही कुछ होई, काहे कि ई जनम मा त हमसे इससे ज्यादा मॉडर्नई ना पची!"

फिर गुप्ता एक बुर्के वाली औरत को डिलडो दिखाते हुए बोला, "यह है एक पर्सनल फ्रेंड। हर घर में ऐसे दोस्त की जरूरत होती है, जो हमेशा

तुम्हारे मूड को समझे, बिना कोई सवाल किए, तुम्हें रिलैक्स करने में मदद करे। काम की बात बस!"

और फिर गोलू के पास आकर बोला, "ब्रह्मचारी हनुमान जी का प्रसाद बेचते-बेचते आज हम ब्रह्मचर्य खत्म करने वाला प्रसाद बेचने लगे और कितना बदले। हमारी खुद की बिटिया हमसे ही वाइब्रेटर खरीदकर ले जाती है, और कितना बदले। अपने ही शहर में भेष बदलकर चल रहे हैं, और कितना बदले?" गुप्ता की आवाज़ में थकान भी थी और चिढ़ भी। सामने गोलू खड़ा था—हमेशा हाज़िरजवाब, पर इस बार चुप। जैसे कोई पुराना मोबाइल हो, नेटवर्क ही पकड़ न रहा हो।

फिर गुप्ता ने हलके से सिर झटकते हुए कहा, "अरे यार, हमहूँ इंसान हैं, कौनों नेता-वेता नहीं कि आत्मा ही बदल लें।" और फिर गोलू पर अपना सारा गुस्सा निकालते हुए, कस्टमर को संभालते हुए बड़बड़ाता रहा।

गुप्ता भरे गले से अपने आप को कोस ही रहे थे कि अचानक उनकी दुकान में एक प्राणी का आगमन हुआ। सर पर एक विचित्र किस्म का स्पोर्ट्स हेलमेट धारण किए, जिसका शीशा इतना घना काला था कि अगर भगवान स्वयं उसमें झाँकते तो भी अपना चेहरा देखने से वंचित रह जाते। यह महानुभाव दुकान में ऐसे घुसे जैसे यहाँ के मालिक स्वयं हों, और अपनी अंगुलियों से गुप्त गुदगुद के डिब्बे को ऐसे उठाया जैसे इस सामान का जन्म ही इनके लिए हुआ हो। आगंतुक ने जेब से पैसे निकाले और गुप्ता जी के सामने रख दी। फिर वह मुड़ा और बिना एक शब्द बोले, बिना उनकी तरफ देखे, दुकान से बाहर निकल गया। गुप्ता का मस्तिष्क उस क्षण किसी बूढ़े

गीदड़ की तरह भौंचक्का हो गया और वे गोलू के कान में फुसफुसाए, "हम शपथ खाकर कह सकते हैं, यह विलक्षण प्राणी हमारे ही मोहल्ले का है।"

गुप्ता ने दुकान का शटर इस अदा से गिराया मानो वो मिठाई की दुकान नहीं, कोई युद्धभूमि का मोर्चा बंद कर रहे हों। चेहरे पर एक अजीब किस्म का तनाव था—न बेचने का, न बचाने का—बल्कि जासूसी का। सामने वाला जो भी था, अब "कस्टमर" से ज़्यादा "केस स्टडी" लग रहा था।

गोलू ने हकबकाकर पूछा,

"गुप्ता, तोहका उके पीछे जाए के कउनो जरुरत बा का?"

गुप्ता ने आँखें छोटी करते हुए जवाब दिया,

"बेटा, व्यापार में तरक्की चाहिए तो ग्राहक के मन की गाँठ और जेब की लंबाई, दोनों पढ़नी आनी चाहिए।"

फिर एक हल्का सा मुस्कान मारते हुए बोले,

"बउवा, हम नाम से भी व्यापारी हैं, और काम से भी।"

गोलू के स्कूटी पर बैठकर उन्होंने पीछा करना शुरु किया—ऐसे मोहल्ले दर मोहल्ले घुसे मानो रॉ (RAW) की कोई लोकल ब्रांच खुल गई हो।

जैसे ही वो रहस्यमयी व्यक्ति गुप्ता के मोहल्ले की तरफ मुड़ा, गुप्ता का सीना हलवाई के घी के कनस्तर की तरह फूल गया।

पीछे बैठे गोलू से बोले—

"देखा बेटा, बोला था न—इसकी चाल पहचान गए थे हम। यह तो हमारे मोहल्ले का ही रत्न निकला।"

मोहल्ले में घुसते ही बाइक की रफ्तार कम हो गई। गुप्ता भी सधे कदमों से पीछा करते रहे।

फिर वो व्यक्ति एक मकान के सामने रुका—और वह मकान, गुप्ता जी के घर से महज दो मकान छोड़कर था।

गुप्ता की आंखें सिकुड़ गईं, जैसे किसी फॉर्म में ‘आधार नंबर’ गलत भर गया हो।

अगला दृश्य ऐसा था, जो टीवी के क्राइम शो में ‘ब्रेक के बाद’ दिखाया जाता है।

उसने हेलमेट उतारा—और गुप्ता की सांस ऐसे थम गई जैसे बिजली के मीटर में अचानक बिल हजार यूनिट ज्यादा दिखा दे।

चेहरे का रंग उड़ गया।

लगा जैसे DM के छापे में सारे हिसाब-किताब गड़बड़ा गए हों।

गोलू कुछ पूछने ही वाला था, पर गुप्ता की आँखें उस चेहरे पर टिकी थीं—जैसे उनके पूरे आत्मसम्मान का बैंक बैलेंस उसी पल शून्य में चला गया हो।

अब रहस्य नहीं बचा था, सिर्फ हकीकत थी।

कड़वी, चुभती हुई, और सीधे दिल पर गिरती हुई—जैसे गरम रसगुल्ले में नमक पड़ गया हो।

उनके मुंह से बमुश्किल निकला, "अरे धत्तेरी की! यह तो वही चुटियाधारी, बाल-ब्रह्मचारी रैंडम दुबे है!"

रैंडम दुबे - मोहल्ले का वही अजीबोगरीब आदमी जो कई सालों से एक बाल ब्रम्हचारी का जीवन जी रहा था। कभी वह स्वामी बनकर उपदेश देता, कभी वह वैज्ञानिक बनकर अजीब-अजीब बातें करता। और यही वह आदमी था जो गुप्त गुदगुद खरीदने आया था!

दुबे  ने चारों ओर इस तरह नज़र दौड़ाई जैसे कि कोई नेता चुनाव के मौसम में वोट गिन रहा हो, फिर बाइक से उतरकर उसे ऐसे अंदर धकेला जैसे कोई अवैध सामान छिपा रहा हो। गुप्ता अभी भी सन्नाटे में खड़ा था।

"गुप्ता जी, क्या हुआ?" गोलू ने बड़े मासूम भाव से पूछा।

"गोलू, यह रैंडम दुबे... यह आदमी... मैं समझ नहीं पा रहा हूं कि यह क्या करना चाहता है गुप्त गुदगुद के साथ।" गुप्ता जी ने चिंतित स्वर में कहा।

“अरे कामदेव जी आप ने यहाँ के लोगों को खुद से प्यार करना सीखा दिया है। वो दिन दूर नहीं जब लोग नाजायज़ सम्बन्ध बनाना बंद कर देंगे। हमारी बच्चियों के साथ बलात्कार बंद हो जाएंगे। बच्चों के साथ दुष्कर्म बंद हो जायँगे।”

गोलू की बात सुनकर गुप्ता को खुद पर गर्व महसूस हो रहा था। गोलू ने गुप्ता को वापस दूकान पर छोड़ा और निकल गया।

गुप्ता पहले ही दिनभर की जासूसी से तन-मन से थके हुए थे। दुकान की गर्मी और ग्राहकों का शोर एक अलग ही किस्म का हवन रच रहे थे, जिसमें उनका धैर्य आहुति बनता जा रहा था। तभी, जैसे किसी नाटक का मुख्य पात्र अपने प्रवेश के लिए नगाड़े बजवाता है, एक हेलमेट वाला प्राणी दुकान में टपक पड़ा। उसने दुकान को ऐसे सूंघा जैसे कोई सरकारी अफसर किसी योजना में गड़बड़ी की गंध पहचानता हो। गुप्ता के काउंटर तक पहुंचा और झुका, जैसे किसी मंत्री के कान में राज की बात बताना चाहता हो।

"माल तो बड़ा नफीस रखे हैं आप! आप यहीं के रहने वाले हैं का जनाब? कौन सी गली-मुहल्ला से ताल्लुक रखते हैं? नामे मुबारक क्या है आपका?" उसने ऐसे पूछा जैसे चुनाव के दिन वोटर लिस्ट के साथ खड़ा कोई बूथ अधिकारी, जिसे न जाने कितने वोटरों की पहचान अभी जांचनी है।

गुप्ता का मुंह ऐसे खुला रह गया जैसे सूखे कुएं में अचानक पानी निकल आया हो। पहली बार किसी ने उससे उसका नाम पूछा था, मानो अब तक वह किसी दफ्तर की फाइल में दबी कोई भूली-बिसरी टिप्पणी हो।

"अरे भइया, इत्ते बढ़िया काम करत हउआ, त कुछ तो नाम-ओ-निशान होई तोहरे भी?" हेलमेट वाले ने फिर पूछा, जैसे किसी सूखे पेड़ को हिलाकर देख रहा हो कि उसमें जान है या नहीं।

गुप्ता के मुंह से अनायास ही निकल गया, "कामदेव।" मानो कोई बचपन में सुनी कहानी अचानक याद आ गई हो।

"का बात है, जइसन नाम, वइसन काम।" हेलमेट वाला ऐसे हंसा जैसे किसी सभा में अपनी ही बात पर तालियां बजाने वाला नेता, और चला गया।

हेलमेट वाले के जाते ही गुप्ता के चेहरे से रौनक ऐसे उड़ गई जैसे बजट के बाद किसी गरीब की जेब से नोट। वह वहीं खड़ा रहा, अपने नए नाम के बोझ तले दबा हुआ, जबकि दुकान में ग्राहक अपनी वासनाओं को ऐसे टटोलते रहे जैसे अंधेरे में कोई सरकारी नौकरी के लिए सिफारिश ढूंढ़ रहा हो।

हेलमेट के भीतर आया आदमी कोई और नहीं इलाहाबाद का हकीम लुक़मानी था। यूनानी दवा खाना चलाता था और खुद को सेक्सोलॉजिस्ट बताता था। एक ज़माने में लुक़मानी इतवारी बाज़ार में चादर बिछाकर छोटी छोटी थैलियों में जड़ीबूटियां बेचा करता था। उसके पीछे से एक बड़े से बक्से के ढकने पर कई कतारों में बादशाही दवाओं का दावा करती छोटी छोटी शीशियां रखी रहती। वो गठे हुए बदन और पान के रंग से रंगी बत्तीसी वाला आदमी था। उसके सामने जल्दी ही ख़रीदारों का मजमा लग जाता था। तब वो बोलना शुरू करता। बोलते में उस पर अजीब जोश और जलाल सा तारी रहता था। लेकिन उसकी तक़रीर हमेशा एक ही सी होती थी।शायद वो उसकी अपनी गढ़ी हुई कोई बोली थी जो अंगरेज़ी न जानने वालों को अंगरेज़ी मालूम होती थी, फिर वो बताता कि उसने विलायत में पढ़ा है और अगर चाहे तो आज ही डिप्टी कलेक्टर हो जाये। भीड़ में से अगर कोई पूछता, "तो फिर यहां क्यों बैठे हो ?" तब लुक़मानी मुस्कुराते हुए जवाब देता, "क्योंकि मुझे तुम जैसे बेवकूफों की सेवा करनी है।" भीड़ हंस

पड़ती। उसी हंसी का फायदा उठाके लुक़मानी आज तीस से ज्यादा यूनानी दवा खाने चलाता है। पर शायद अब उसको अपने धंधे के लिए डर सताने लगा था ।

**अगली सुबह** की शुरुआत रैंडम दुबे के घर से आई खबरिया चैनल की मंझी हुई आवाज़ से हुई। चैनल पर बैठा वो हुड़कचुल्लु एंकर, जिसे न तो पत्रकारिता का मतलब पता था और न ही उसकी आवाज़ का, बड़बड़ाते हुए चिल्ला रहा था कि कैसे गुड़-गोबर पार्टी के कार्यकर्ताओं ने वैलेंटाइन हफ्ते में इलाहाबाद के बच्चों को पश्चिमी सभ्यता के 'पापी जाल' से बचाने के लिए एक ऐतिहासिक अभियान चला डाला।

"प्यार करना अब इस देश में गुनाह हो गया है," नीता सुबह-सुबह सिर झटकते हुए बड़बड़ाती हुई कमरे से बाहर निकली। "अब तो लगता है, जो सच्चे दिल से प्यार करते हैं,, पाकिस्तान भेजे जाएंगे!"

गुप्ता जी के हाथों में लोटे से गिरती जलधार जैसे उनके भीतर की सारी उलझनों को बहा देना चाहती थी, पर मन के भीतर का संशय वहीं अटका था—कल रात का देखा-सुना, उस हेलमेट वाले का रहस्यमयी बयान, और घर के बगल वाले कमरे में छिपती कोई अनदेखी परछाई।

तुलसी के पौधे के सामने खड़े होकर उन्होंने सूरज को जैसे मन ही मन कहा—

"हे भगवान, जैसे आप पूरब से निकलते हैं, वैसे ही मेरे मन के अंधेरों से भी कोई रोशनी निकल आए..."

पीछे नीता चुपचाप कपड़े झटक रही थी। धूप की पहली किरणें नीता की साड़ी में अटककर जैसे उसके चेहरे पर उतर आई थीं, पर उसके हाथ यंत्रवत् थे—न कपड़े देख रही थी, न धूप।

उसकी नज़र बीच-बीच में गुप्ता की पीठ पर पड़ती, फिर सहसा कहीं खो जाती। तभी अचानक गुप्ता ने नीता की तरफ पलटते हुए पूछा—

"सुनो," गुप्ता ने नीता से कहा, "का हमार मुँहवा देख के लगत है कि हम कामदेव हईं?"

नीता ने साड़ी से हाथ पोंछते हुए गुप्ता को घूरा, जैसे वो जांच रही हो कि चाय में चीनी ज़्यादा तो नहीं पड़ गई थी।

"कल एक आदमी आया रहा दुकान पे। पूछिस — 'भइया नाम का है?'

हम कह दिहिन — 'कामदेव'।

अबे, का बताईं, चेहरा देख के लाग रह रहा था कि असली नाम बताई दिहिन त ई आदमी आधार लिंक कर दीहै मिठाई से!"

नीता कपड़ों को सुखाना छोड़कर हँसने लगी। हँसते-हँसते उसकी आँखों से पानी निकलने लगा। "तुम... तुम... कामदेव?" उसने हँसी को काबू करने की कोशिश की। "कोई तुम्हें कामदेव मानेगा भी? तुम्हारी इस अर्धगंजी खोपड़ी और इस पेट के साथ?"

गुप्ता की छाती में ऐसा कुछ टूटने की आवाज आई, जैसे किसी पुराने खंडहर में पत्थर गिरने की। आँखें झुक गईं, ठीक वैसे जैसे कोई लड़का पहली बार प्रेम में धोखा खा के खड़ा हो। वह तो बस यह जानने की

कोशिश कर रहा था कि जो नाम वह ग्राहकों को सुना-सुना के थक चुका था, वह सच में काम आता है या सिर्फ किसी बेवकूफी की तरह गढ़ा हुआ था। नीता की हंसी से अब साफ़ हो चुका था कि उसका नकली नाम, एकदम जंगली घोड़े की तरह, न तो सवारी के लायक था, न ही उसे किसी ने कभी घास डाली थी।

“लो, मिठाई खाओ और जाओ मिठाई बेचने!” नीता ने कनस्तर उसके सामने पटकते हुए कहा, जैसे कचरे का ढेर फेंका हो। “तुम्हारी शक्ल तो अब बिलकुल जलेबी वाले हलवाई जैसी हो गई है!” यह कहते हुए नीता मुँह बिचकाते हुए किचन में घुसी। अंदर से बिन बुलाए देवता की तरह “काममममम देववववव” की आवाजें सुनाई दे रही थीं। गुप्ता ने कनस्तर उठाया और लूना में सवार हो कर घर से बाहर निकले। बाहर आते ही सबसे पहले सीआईडी अंकल का दर्शन हुआ, जिनके हाथ में झूलती पेशाब की थैली देखकर गुप्ता ने मुंह घुमा लिया। मगर फिर उसकी नजर पड़ी रैंडम दुबे पर। और दुबे से आँखें मिलाने का मतलब था, न चाहते हुए भी एक ऐसा वाद-विवाद शुरू होना, जो बिना किसी रिजल्ट के खत्म होने वाला नहीं था।

“गुप्ता जी! आज की खबर सुनी?” दुबे ने अपनी बेशरम अंताक्षरी शुरू की। गुप्ता ने बस मन ही मन भगवान से प्रार्थना की कि लूना एक किक में स्टार्ट हो जाए। दुबे फिर से बोला, “हम तो कहते है, सही किया गुड़ गोबर के कार्यकर्ताओं ने। ये आज कल के लौंडे हवस का नंगा नाच करते है वैलेंटाइन डे नाम पर।” गुप्ता की लूना ने फिर से धोखा दिया, लेकिन उसने बेमन से कहा, “सही कह रहे हैं भाईसाहब!” जैसे ही गुप्ता ने यह कहा, दुबे

ने फिर वही घिसा-पिटा सवाल पूछा, “क्यों भाईसाहब, कुछ गलत कहा क्या हमने?” और फिर बेकसूर राह चलते आदमी से वही सवाल पूछता चला गया, “कुछ गलत कहे हो तो टोक दीजियेगा!” गुप्ता की लूना, शायद भगवान की दया से, इस बार फिर स्टार्ट हो गई।

“इस देश का युवा, जब तक वीर्य बहाता रहेगा, तब तक वीर नहीं बनेगा। गुप्ता जी, इसलिए मैंने शादी नहीं की, हमेशा ब्रह्मचर्य का पालन किया!” दुबे का इतना कहना था कि गुप्ता की हंसी छूट गई। ठहाका लगा के वह वहां से फुर्र हो गए।

दुबे वहीं खड़ा रह गया, जैसे मूर्तिवत हो गया हो—मुंह खुला, पर शब्द गायब। उसकी ब्रह्मचर्य वाली बकैती का असर ऐसा पड़ा, जैसे बंदे ने गलती से मीठे में नमक डाल दिया हो और अब सबका मुँह बिचका हुआ हो।

सीआईडी अंकल की मुस्कान अभी भी बनी हुई थी—वो मुस्कान नहीं थी, बल्कि एक "अबे चल झूठे" वाला साइलेंट रिएक्शन था, जो उनके चेहरे पर पहली बार फुल एचडी में नजर आ रहा था। उनके हाथ की पेशाब की थैली थोड़ी ऊपर हो गई थी, जैसे उसका भी कोई अभिमान जाग गया हो।

दुबे ने हड़बड़ाकर खुद को समेटा। उसने चारों ओर देखा—शायद कहीं से कोई तालियाँ बज जाएँ, या कोई उसकी बात से प्रभावित हो कर सन्यासी बनने चले, मगर आस-पास बस वही मोहल्ला था, जहाँ सबको सब पता होता है—बस कोई मुँह खोलता नहीं।

फिर वह खुद से ही बुदबुदाया,

"ब्रह्मचर्य की कद्र ही नहीं रही इस कलयुग में..."

और ये कहते-कहते वह वापस अपने घर में घुस गया जैसे कोई हार के बाद भी विजयी मुद्रा में लौटता है—कंधा ऊँचा, पर आत्मा हल्की टूट चुकी।

अपनी दुकान छंगे हलवाई सीन्स 1857 पहुंचते ही, गुप्ता ने पाया कि उनके बोर्ड पर लिखे इलाहाबाद को कोई मिटा गया।

गुप्ता कुछ पल तक उस मिटे हुए "इलाहाबाद" को ऐसे देखता रहा जैसे कोई बूढ़ा अपनी बचपन की तस्वीर को फटी हालत में देख रहा हो—पहचान तो आ रही थी, पर अब उसमें वो बात नहीं बची थी।

“प्रयागराज...” गुप्ता ने मन ही मन दोहराया, जैसे ज़बान को यकीन दिला रहा हो कि अब यही नाम है। फिर उसने एक लंबी साँस ली, जो बीते हुए ज़माने को सीने से निकालने जैसा था।

“कलुआ,” उसने धीमे पर ठहरे हुए स्वर में कहा, “इलाहाबाद तो हमारे दुकान का नाम भर नहीं था, वो हमारी नाभि से जुड़ा था।”

कलुआ ने मुस्कुराते हुए जवाब दिया, "अरे मालिक, अब त कउनो बचल नाहीं जो समझावे। ई सरकार त खुदै खून का रिश्ता काट के कागज पर नया बाप लिख देतिया! मोहल्ला बदल देत हैं, शहर के नाम बदल देत हैं, कल को कहिहैं—तुम्हर जनम भी कहीं अउरी भइल रहा!" कलुआ के इतना कहते ही गुप्ता की नजर बाकी के दुकान के बोड्र्स पर पड़ी। **"इलाहाबाद"** अब हर जगह से मिटा दिया गया था—मोहल्लों की दीवारों से, दुकानों की नेमप्लेट से, सरकारी नोटिसों तक से।

"अब भइया, आप त अब दुकानवा में झाँकतौ नाहीं—कउनों नया धंधा धर लिहे का?"कलुवा के इतना पूछते ही पहले तो गुप्ता थोड़ा डरा और फिर फ़ौरन हड़बड़ाते हुए बोला।

"अरे बैठते त हैं यार! लेकिन जब दुकानवा बस मंगल के मंगले चलत है, त बाकी दिन गल्ला निहार के का रोटी सिकेगी? खाली बैठ-बैठ के तो अब कटोरा भी शरमाए!"" इतना कहते ही उसने मिठाइयों के कनस्तर दुकान में रखें और रास भंडार की ओर चलता बना। कलुआ एक टक गुप्ता को वहां से जाते हुए देखता रहा और फिर जाकर गल्ले पर बैठ गया।

कलुआ की आँखों में हल्की-सी चिंता और थोड़ी-सी जिज्ञासा थी। गुप्ता की चाल में जो बेचैनी थी, वो अब तक उससे छुपी नहीं थी। रोज़ दुकान में पहले आने वाला, सबसे देर तक बैठने वाला गुप्ता अब चुपचाप आता, कुछ मिठाई के डिब्बे इधर से उधर करता और फिर बड़े बाज़ार की ओर निकल लेता — जैसे दुकान अब उसके जीवन की प्राथमिकता न होकर बस एक औपचारिकता भर रह गई हो।

गुप्ता ने रास भंडार का शटर ऐसे खोला था जैसे कोई पुरानी किताब का पन्ना पलटा हो—धीरे, सावधानी से, मानो हर परत में कोई किस्सा छुपा हो।

तभी, सन्नाटे को चीरती हुई वह दाखिल हुई—एक औरत, चेहरे पर गहरे रंग का दुपट्टा, सिर्फ आँखें दिख रही थीं, और वो भी वैसी कि जैसे किसी पुरानी तहकीकात में उलझी हों। उसके हाव-भाव में एक अजीब झिझक थी, जैसे कोई स्कूल की प्रार्थना सभा में गलत लाइन से खड़ी हो गई हो।

गुप्ता उसे देखकर चौकन्ना हो गया। उसने दुकान में अपनी "सेल्समैन मुस्कान" लगाई। धीरे-धीरे उसके पास गया, जैसे कोई अनुभवी जासूस किसी गवाह के पास जाता हो।

“यह कोई साधारण रबर नहीं है, ये तो 'प्रेम की शक्ति' का प्रतीक है! यह एक ऐसा टॉय है, जिससे आपकी नींद भी पूरी हो सकती है और आपका सपना भी” गुप्ता फुल कॉन्फिडेंस के साथ किसी मार्केटिंग एक्सपर्ट की तरह बोला। महिला हंसी रोकते हुए गुप्ता को धन्यवाद देती है और चली जाती है।

काफी देर बाद, एक और महिला दुकान में घुसती है, उसकी आँखों में थोड़ी चिंता है, जैसे किसी समस्या का सामना कर रही हो। वह संकोच करते हुए एक प्रोडक्ट की तरफ इशारा करती है। गुप्ता तुरंत समझ जाता हैं और मुस्कुरा के उसके पास पहुंचता हैं। गुप्ता एक चमकदार, चिकना वाइब्रेटर हाथ में उठाता है और उसे ड्रामे के साथ दिखाता है।

“यह है एक ऐसी चीज, जो हर इंसान के लिए एक बेहतरीन साथी हो सकती है... पर, जरूरी नहीं है कि यह तुम्हारे साथ डिनर पर जाए, या तुम्हारे रिश्तेदारों के साथ बैठकर चाय पिए!”

वो औरत जोर से हंसती है, जबकि बाकी के ग्राहक गुप्ता को अजीब तरीके से देखते है।

“यह प्रोडक्ट, दोस्तों, अपने आप में ‘बातचीत का चैम्पियन’ है। इसके साथ अपनी प्राइवेसी का भी ख्याल रखा जा सकता है, और अगर ज्यादा शर्मिंदगी हो, तो इसके साथ बात भी की जा सकती है!” सब दूकान में

मौजूद सभी लोग हंसने लगते है। तभी वो औरत एक वाइब्रेटर को उठाते हुए पूछती है “यह वाइब्रेटर किस काम का है?”

गुप्ता शरारत से उचकता है और जवाब में कहता है , “यह है एक पर्सनल फ्रेंड। हर घर में एक ऐसे दोस्त की जरूरत होती है, जो हमेशा तुम्हारे मूड को समझे और तुम्हें रिलैक्स करने में मदद करे। न कोई सवाल, न कोई शिकायत, बस काम की बात!”

जैसे-जैसे संध्या के पैर भारी होते गए, दुकान में शांति के डेरे लग गए। गुप्ता अपने काउंटर के पीछे सिंहासन पर विराजमान, चाय की चुस्कियां ले रहे थे, जैसे दुनिया की सारी खुशियां उन्हीं के प्याले में समाई हो। किंतु शांति का यह आसन तभी टूटा जब एक स्त्री, गांव की मिट्टी की तरह साधारण पर शहरी हवा से सजी, दुकान में प्रवेश कर गई।

वह बिना किसी संकोच के, जैसे अपने घर में हो, सीधे स्टोर की ओर बढ़ गई। वहां से एक जादुई झुनझुना उठाया। काउंटर पर आकर उसने कीमत पूछी, ऐसे जैसे कोई अनजान ग्राहक पूछता है, और पैसे निकालने के लिए जैसे ही उसने अपना पर्स बाहर निकाला, गुप्ता का शरीर ऐसे कांप उठा जैसे दिसंबर की ठंडी हवा ने उनकी हड्डियों को सहला दिया हो। उसने चाय की चुस्की रोक दी। कप होंठों से कुछ दूर अटका रहा, जैसे निर्णय ले रहा हो कि इस क्षण को पीया जाए या निहारा जाए।

वह पर्स तो उनकी पत्नी नीता का था! संसार के सारे विश्वास जैसे एक झटके में लुप्त हो गए। और कुछ ही क्षणों में वह जान गए कि दुपट्टे के पीछे छुपी औरत और कोई नहीं, उनकी अर्धांगिनी नीता ही थी। उनका हृदय ऐसे

टूट गया जैसे सूखा पत्ता पेड़ से टूटकर सरकारी कार्यालय में पड़ी फाइल की तरह नीचे आ गिरा हो।

गुप्ता कांपते हाथों से, जैसे सरकारी कर्मचारी रिश्वत लेता है, पैसे लेते हुए कुछ देर तक सुन्न-सा खड़ा रहा। नीता के निकलते ही, उसने गोलू को फोन लगाया और घाट पर मिलने को कहा, ऐसे जैसे अब घाट ही एकमात्र स्थान हो जहां उनकी टूटी जिंदगी के टुकड़े फिर से जुड़ सकते हों।

गोलू घाट पर डेरा डाले बैठा था—घुटनों पर कोहनी टिकाकर, पानी में पत्थर उछालता हुआ, मानो हर छपाक में जिंदगी के सवाल छुपे हों और जवाब सिर्फ लहरों के पास हो। गुप्ता जब वहाँ पहुँचे तो उनकी चाल में वही तेज़ी थी जो 'रास भंडार' की रोज़ की कमाई में होती है—हिसाब-किताब वाली।

"गोलू..." गुप्ता की आवाज़ में काँपन नहीं था, बस थकान का भार था। फोन पर तो सारी बात कह ही चुके थे। जब गोलू चुप्पी साधे रहा तो गुप्ता उसके बगल में जाकर बैठ गया। घाट की सीढ़ियाँ तो ठंडी हो गई थीं, पर दिल की आग अभी भी तप रही थी।

पानी यूँ बह रहा था जैसे पूरे शहर के पाप-तमाम इसी धारा में घुल-मिलकर समुंदर की तरफ़ भाग रहे हों। गोलू ने आहिस्ता से गुप्ता की तरफ़ निगाह उठाई और कहा,

"अरे यार, तुम्हे पता है हमरे मुल्क की सबसे बड़की बीमारी का नाम का है?"

फिर खुद ही अपने सवाल का जवाब देते हुए बोला,

"शादी-ब्याह के बाद वाली जिंदगी! कोऊ नहीं सिखावत कैसे जियल जाला इसे। बच्चे-बच्चा हो गवा, फेर लोग डूब जालें जिम्मेदारी में, एक-दूसरे की जरूरत के बारे में भूल जालें बिल्कुल।"

फिर हँसते हुए ठहाका लगाया, जैसे अपनी ही बात का मज़ाक उड़ा रहा हो,

"और ई जो शादी-शुदा लोग हर तीसरे दिन एसिडिटी की गोली गटकते हैं ना, असली वजह हजम न हुई बातन की है—लाज-शरम, संकोच, और वो जो 'हम कुछ बोले नहीं तो शादी टिक जाएगी' वाला भ्रम। एक पूरी ज़िंदगी साथ गुजर जाती है, पर मियाँ-बीवी के बीच दो टुक बात नहीं हो पाती। हमरे समझ में नाहीं आता कि कौन सी ऐसी ज़िम्मेदारी है जो मियाँ-बीवी को एक साथ रहते हुए भी अलग कर देती है।

सबसे ज़रूरी बात कोई नहीं बताता—कि शादी-ब्याह के रिश्ते में सेक्स पर बात करना भी ज़रूरी है। कौनों किताब, कौनों बुज़ुर्ग नहीं सिखावत कि एह रिश्ते में वो भी एक हिस्सा है।"

इतना कहकर उसने एक कंकड़ उठाया और पानी में फेंका—कई छल्ले बनते गए, जैसे जिंदगी के सवाल।

गोलू की हर बात गुप्ता के दिल को चीरती जा रही थी। जब वह घर लौटा तो नीता कितनी खुश लग रही थी। उसे देखते ही बिना कुछ कहे वह चाय बनाकर लाई। यह गुप्ता के अंदर की पुरानी शर्म और डर का मरना था। इलाहाबाद की गलियों में एक नई हवा बह रही थी। युवा, खासकर औरतें जो पहले अपने शरीर और ख्वाहिशों को लेकर शर्मिंदा रहती थीं,

अब खुलेआम इन बातों पर बोलने लगी थीं। यह शहर जहां पहले छिपे रहस्यों और शर्मगीनता का घर था, अब खुलेपन और आत्म-स्वीकृति का प्रतीक बनने लगा था।

उस रात जब वो लौटा, तो सीआईडी अंकल से नजरें चुराने का ड्रामा नहीं किया। सीधा जा पहुँचा और उन्हें उनकी पेशाब की थैली समेत अंदर ले गया। अंकल की बहू अंदर रसोई में दाल का छौंक लगा रही थी और वहीँ खड़ा-खड़ा गुप्ता बोला —

"बुढऊ... जिम्मेदारी बोझ नाहीं होई। ई तो करम होई... नीमन करम!"

और इतना कह के, चुपचाप लौट आया।

उस रात पहली दफ़ा उसने खुद को आईने में देखा — वैसे देखा नहीं, जिरह की।

"का हम उहे गुप्ता हैं... जवन मोहब्बत के चक्कर में हलवाई बन जाए के सपना देखत रहा?"

आईना चुप था, लेकिन उसकी चुप्पी में एक तीखा सच था।

गुप्ता ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरा — बाल खुरदुरे थे, जैसे ज़िंदगी के उलझे हुए किस्से। पेट बाहर निकला हुआ था, पर असल में वह पेट नहीं, तनावों का वर्षों पुराना स्टोरेज लग रहा था। आँखें... हाँ, वही आँखें, जिनमें कभी ग्राहक की नब्ज़ और बीवी की चुप्पी दोनों पढ़ने की कला थी — अब उनींदी और धुँधली हो चुकी थीं।

कमरे के कोने में टंगी नीता की साड़ी हवा से सरसराई, और गुप्ता को लगा जैसे अतीत की कोई अधूरी बात फुसफुसा रही हो।

वो कुर्सी पर बैठ गया। एक पुरानी, चरमराती हुई कुर्सी — जिस पर बैठते ही ऐसा लगा जैसे उम्र खुद कान में कह रही हो, "अब आराम कर ले, तू बहुत भाग चुका।"

फिर उसने अपनी हथेली खोली, और कुछ देर यूँ ही देखता रहा — जैसे कोई भूला हुआ वादा उसमें लिखा हो।

एक वादा — खुद से, नीता से, और उस जीवन से जो अब सिर्फ जिम्मेदारियों के चालान कटने का जरिया बन गया था।

गुप्ता ने तय किया — कल कुछ बदलेगा। नहीं, बहुत कुछ नहीं... पर थोड़ा सा।

शायद एक बात कहेगा नीता से।

शायद एक बार फिर खुद को देखेगा, आईने में नहीं... भीतर।

और शायद एक बार फिर, गुप्ता, अपने नाम से थोड़ा प्यार करेगा।

घंटों तक वो बैठा रहा, उस श्रृंगारदान के आईने के सामने — जो दहेज में नीता के संग आया था, और अब गुप्ता के वजूद को निचोड़ रहा था। आईना वैसे तो औरतों के सिंगार के काम आता है, लेकिन उस रात वो गुप्ता की आत्मा का एक्स-रे बन बैठा था।

नीता वहीं थी, बिस्तर पर, बड़ी तसल्ली से नींद में मगन — उसे कोई इल्म नहीं था कि जो 'मैजिक झुनझुना' वो आज लाई थी, असल में उसी के मियां की दुकान थी।

गुप्ता का जी चाहा कि वो नीता को गले लगा ले — बस यूँही, बेवजह। पर हाथ बढ़ते ही जैसे कोई अदृश्य झटका लगा।

अपना ही पसीना!

ऐसी महक, जैसे पुराने ट्रैक्टर के इंजन से धुआँ निकले। वो ठिठक गया। उसी पल समझ आया — जैसे देर से आई बारिश में गाँव की मिट्टी महके, वैसे ही उस पर एक समझ उतरी:

"जब अपने से ही मोहब्बत ना रह गई हो, त दूसरन से का ही उम्मीद करे भइया?"

उसे लगा, जैसे सचमुच बुड्ढा हो गया हो। उसके जिस्म से अब वो महक नहीं, बल्कि 'कीटनाशक स्प्रे' जैसी गंध आती है — जो किसान फसल पर छिड़कता है, पर खुद ही खाँसते-खाँसते सूख जाता है।

वो चुपचाप जाकर पलंग पर बैठ गया। ऐसे जैसे कोई रिटायर्ड हेडमास्टर। नीता करवट बदलकर सोती रही, और गुप्ता की हिम्मत — अपनी ही घरवाली को गले लगाने की — कहीं गुम हो चुकी थी, शायद उसकी दुकान में, जहाँ से झुनझुना बिकता है।

उस रात गुप्ता की आँखों में नींद नहीं, समझदारी उतर आई थी — वो समझदारी जो किताबों में नहीं, थक चुके दिलों और जंग खा चुके रिश्तों की धूल में मिलती है। पहली बार, उसने खुद से न तो सवाल किया, न ही

कोई जवाब माँगा... बस खुद को “महसूस” किया — बिना किसी शर्म, सफाई या संकोच के।

उसका मन बार-बार नीता की तरफ खिंचता जा रहा था, जैसे बरसों बाद कोई रास्ता अपने ही घर की ओर मुड़ गया हो।

धीरे से, बिना कोई आहट किए, वह कमरे के अंधेरे में नीता के पास गया। वह नींद में थी — थकी, शांत, और अपने ही बोझों के नीचे गहरी डूबी हुई। गुप्ता ने उसके सिर के पास बैठकर बस उसकी साँसों की लय सुनी। और पहली बार, उसने चाहा कि नीता उसे सुने नहीं, समझे — वैसे ही जैसे वो खुद को अब धीरे-धीरे समझने लगा था।

उसने हल्के से नीता की हथेली थामी — कोई आग्रह नहीं, कोई दावा नहीं — बस एक मौन सहमति, एक खामोश स्वीकार।

शायद यही था उनका नया संवाद, जहाँ शब्दों की ज़रूरत नहीं थी।

जहाँ स्पर्श, पश्चात्ताप नहीं — समझदारी का प्रतीक बन गया था।

गुप्ता ने अपनी आँखें मूँदीं, और पहली बार कोई सपना देखा जो सिर्फ सेक्स या साहसिकता का नहीं था —

बल्कि अपने अधूरेपन को पूरा मानने का था।

और उस रात, कमरे में कोई बड़ी बात नहीं घटी।

सिर्फ इतना हुआ — कि गुप्ता ने खुद को माफ़ किया।

और शायद, नीता ने भी।

बिना कुछ कहे।

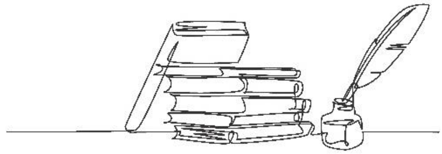

# ब्रेकिंग न्यूज़

अगले दिन गोलू माल लेकर दुकान पंहुचा। गली की दीवारें पुराने विज्ञापनों के चिथड़ों से सनी थीं। इन्हीं दीवारों के बीच, गुप्ता की दुकान अपनी चमक-दमक के साथ खड़ी थी - "रास भण्डार"। यह नाम पढ़कर लोग मुस्कुराते, फिर शर्म से नज़रें झुका लेते। गुप्ता, एक बुर्क़े में लिपटी औरत को एक पैकेज थमा रहा था। पैकेज में क्या था, यह जानते हुए भी अनजान बनने की कोशिश कर रहा था। औरत की आँखें, बुर्क़े के छिद्रों से झाँकती हुईं, ऐसी लग रही थीं जैसे किसी पिंजरे में कैद चिरैया। उसके हाथ काँप रहे थे, जैसे वह कोई गुनाह कर रही हो। बाहर सड़क पर, एक रिक्शा वाला अपने रिक्शे को धक्का दे रहा था। उसकी पीठ पसीने से तर थी, और उसकी आँखें थकान से लाल। वह रुक-रुक कर दुकान की ओर देख रहा था, जैसे कोई राज़ जानता हो। गुप्ता दुकान के पीछे गोदाम वाले कमरे में गया, जहाँ उसका दोस्त गोलू मिश्रा बैठा था। गोलू के चेहरे पर चिंता की लकीरें ऐसी थीं, जैसे किसी ने चाकू से खींची हों। वह अपने फ़ोन पर ख़बरें सुन रहा था। ख़बर थी: "इलाहाबाद के एक व्यापारी पर अश्लील सामान

बेचने का आरोप।" गोलू ने फ़ोन बंद कर दिया, उसकी आँखों में वही डर था जो एक चोर की आँखों में होता है जब वह पकड़ा जाने वाला होता है।

दोपहर की झुलसती गरमी में, बबली भैया अपने भारी-भरकम शरीर और गुंडों की फौज के साथ गुप्ता की दुकान पर ऐसे टूट पड़ा, मानो कोई बवंडर आया हो। दुकान के भीतर पहुँचते ही, उसने अपने मोटे हाथों से सेक्स टॉयज़ ऐसे चूर-चूर कर दिए जैसे किसी अपवित्र चीज़ को मिटा रहा हो। उसके मुँह से जहर टपक रहा था, "ई गंदगी न चलेगी हमरे कस्बे में, बाबू!" उसकी आवाज़ हवा में टंगी रह गई। दूर कोने में खड़ा गुप्ता, जिसने पहचान छिपाने के लिए नकली दाढ़ी लगा ली थी, यह सब चुपचाप देख रहा था। उसके चेहरे पर ऐसी बेबसी फैली थी जैसे कोई उसे सरेआम बेइज्जत कर गया हो—एक अजीब सी उलझन, शर्म और गुस्से का मिला-जुला चेहरा। उसकी आँखें चौड़ी हो गई थीं, जैसे कोई मूक जानवर अपने शिकारी के सामने सहम जाता है।

अचानक बबली भैया की नज़र उस पर पड़ी। वो ऐसे लपक कर गुप्ता की तरफ बढ़ा, जैसे कोई भूखा बाघ अपने शिकार की ओर दौड़ता हो। उसके मोटे हाथ गुप्ता की गर्दन पर कस गए, गिरेबान खींचते हुए उसकी उँगलियाँ गले में धँस गईं। "कहां के हो बे तुम?" उसकी आवाज़ में ऐसी धौंस थी जैसे किसी के गले पर चाकू रख दिया हो। गुप्ता की आवाज़ तो जैसे कहीं गुम हो गई थी। गुप्ता सदमे में खड़ा रहा। उसके सामने का दृश्य किसी फिल्मी धमाके जैसा था, जिसमें धुआं छंटने के बाद पता चलता है कि कौन-कौन ज़िंदा बचा है।

तभी गोलू ने बीच बचाव करते हुए सारा इल्ज़ाम अपने ऊपर लेते हुए गुप्ता को जैसे तैसे पिटने से बचाया। "कामदेव भैया, आप ठीक हैं?" गोलू ने अपने होंठ पोंछते हुए पूछा। उसकी आवाज़ में एक लड़खड़ाहट थी, जो किसी घायल योद्धा की तरह लग रही थी। गोलू ने ऐसी हालत में भी गुप्ता का असली नाम अपनी ज़बान से बाहर नहीं आने दिया।

मगर, इस खुदगरज़ बचाव के चक्कर में गोलू को भी एक आध हाथ जरूर पड़ गए थे बबली भइया के। "बउवा, तुम अपने शहर के हो, इसीलिए छोड़ दे रहे हैं," गोलू को धमकी देते हुए बबली भइया अपने गुंडों के साथ वहां से रुखसत हो गया।

अब इलाहाबाद का आसमान तेज़ी से काला हो रहा था। सडक किनारे जलते बल्बों की रोशनी में उनके चेहरों पर एक अजीब सा ख़ौफ़ नृत्य कर रहा था।

"चलीं भइया, बहुत भटक लिहे, अब घर चलल जाए!" गोलू ने कहा, और अपना हाथ गुप्ता के कंधे पर रखा।

"नाहीं गोलू, हमका कहीं और जाना है।" गुप्ता ने कहा। उसकी आवाज़ में एक नया दृढ़ निश्चय था, जैसे कोई आदमी बहुत देर तक सोने के बाद अचानक जागकर फैसला करे कि अब वो अपनी ज़िंदगी बदल देगा।

"देखिए, जो हुआ वो सही तो नहीं हुआ, लेकिन अब बैठ के सोच-विचार तो करना ही पड़ी।" गोलू के इतना कहते ही गुप्ता भड़क उठा।

“आज तो जैसे हमारा चीर हरण होते होते बचा। अगर वो हमारी असली पहचान जान गए होते तो हम तो किसी को मुंह दिखाने काबिल नहीं

बचते। क्या जवाब देते अपने बच्चों को।" गुप्ता यूँही गुस्से में बड़बड़ाता रहा और गोलू चुपचाप सब सुनता रहा।

उस रात जब गुप्ता घर लौटा, तो उसका मुँह ऐसे सूजा हुआ था जैसे किसी ने उसकी इज्ज़त को भी सरेआम पीट दिया हो। सीआईडी अंकल को बाहर देखकर गुप्ता उनके पास गया—उनकी पेशाब की थैली संभाली, व्हील चेयर धकेलकर कमरे में पहुँचाया। बड़े आराम से बिस्तर पर लिटाया और बहू को भी खबर कर दी। आज न जाने क्यों अंकल की तेज़ नज़रों से भी कोई घबराहट नहीं थी—शायद अपनी ही हालत इतनी खराब थी कि और कुछ डराने को बचा ही नहीं था।

नीता दरवाजे पर खड़ी थी, और गुप्ता की सूरत देखते ही उसके दिल में हूक उठी। चेहरा सब कुछ कह रहा था, पर ज़ुबान गूंगी बनी थी। नीता ने अपनी आवाज़ में कंपन दबाते हुए पूछा,

"का हुआ? ये कउने किहल?"

गुप्ता ने नज़रें चुराते हुए एक फीकी हंसी के साथ कहा,

"कुछऊ न, रास्ता में गिर गवा रहे।"

नीता का दिल धक्क से रह गया—उसे पता था कि ये जवाब वैसा ही खोखला था जैसे दीमक खाई लकड़ी। गुप्ता की आवाज़ में हल्की सी कंपकंपी थी, जो साफ़ बता रही थी कि बात सिर्फ़ गिरने की नहीं थी। नीता के भीतर सवालों का तूफ़ान उठ खड़ा हुआ—कौन, क्यों, कैसे?—पर वह बस चुप रही, उसकी आँखों में शक की चिंगारी और गुप्ता के झूठ में सुलगती सच्चाई।

अगली सुबह हुई , रैंडम दुबे के घर से चिल्लाता बागड़बिल्ला एंकर पूरे मोहल्ले को चिल्ला चिल्ला कर रास भंडार को ऐसे प्रस्तुत कर रहा था जैसे किसी सेक्स स्कैंडल का पर्दाफाश कर रहा हो। मुट्ठीगंज समेत अब तक पूरे इलाहाबाद में रासभंडार वाली बात फ़ैल चुकी थी।

शहर इलाहाबाद के बड़े बाजार में ऐसा कुछ हो गया था, जिसने सबको हिला दिया। "व्यापारी अश्लील सामग्री बेचते हुए पकड़ा गया" ये खबर वैसे तो अखबार के तीसरे पन्ने के कोने में छपी थी, पर शहर की गलियां इस पर चर्चा गरमा गई थी। गुड़ गोबर पार्टी के कार्यकर्ताओं ने छापा मारा था, दुकान के अंदर लाखों की अश्लील सामग्री बरामद हुई। पर व्यापारी? वो तो मौके से फरार हो गया था। कोई जानता भी नहीं, कि ये व्यापारी कौन था, कहाँ से आया था। गुड़ गोबर पार्टी का दावा था कि उन्होंने पहले ही प्रशासन को बताया था कि यहां कुछ गड़बड़ चल रही है, पर जब कोई कार्रवाई नहीं हुई, तो खुद ही हाथ में डंडा उठा लिया।

गुप्ता आँगन में बैठा था — एक हाथ में आधा खाली चाय का कप, दूसरे कान में न्यूज़ एंकर की चीखती हुई देशभक्ति। लेकिन मन उसका कहीं और भटक रहा था, जैसे कोई पुरानी रसीद जिसे जेब में भूल आए हों — मुड़ी-तुड़ी, मगर जरूरी।

नीता दूर खड़ी थी, पर उसकी निगाहें गुप्ता के चेहरे पर ऐसे टिकी थीं जैसे कल रात का कोई अधूरा सवाल वहीं अटका हो, होंठों के किनारे। चाय ठंडी हो रही थी, ख़बरें गरम।

इतने में खुशबू अखबार लिए अंदर आई — रोज़ की तरह, मगर उस दिन कुछ अलग था। उसकी चाल में वो लय नहीं थी, और गुप्ता की साँस जैसे बीच वाक्य में अटक गई हो।

उसे लगा जैसे कोई उसका राज आज सुबह की स्याही में लिपटा हुआ दरवाज़े से दाखिल हो गया हो।

खुशबू के हाथ में अखबार देखकर उसे लगा जैसे जमीन खिसक गई हो। "क्या यौन स्वतंत्रता भी मौलिक अधिकार है ?" अखबार के पन्ने पर मोटे काले अक्षरों में ये सवाल चमक रहा था, और उसके नीचे लिखा था— खुशबू गुप्ता। गुप्ता की आँखें गीली हो गईं। ये आँसू गर्व के थे या डर के, उसे खुद समझ नहीं आया। उसका दिल तेजी से धड़कने लगा। क्या उसकी बेटी ने सही किया ? या फिर शहर में आग लगा दी ? खुशबू के चेहरे पर शांति थी, जैसे वो पहले से ही इस पल का इंतजार कर रही थी ।

"हमारे स्कूल में एक पत्रकार आए थे," खुशबू ने शांति से कहा। "उन्होंने हमसे सवाल पूछा, और बस मेरा ही जवाब छपा।" उसकी आवाज़ में गर्व था, जैसे उसने कोई बड़ा काम कर दिया हो। मिश्री लाल, जो अब तक चुपचाप खड़ा था, आखिरकार मुस्कुराते हुए बोला, "कलेक्टर बनने की तैयारी करो तुम, कहाँ इंजीनियर बनने का सोच रही हो।" वो मुस्कुराया और धीरे-धीरे कमरे से बाहर चला गया, पर पीछे छोड़ गया वो सवाल, जो अब गुप्ता के दिल और शहर की गलियों में गूंज रहा था।

पतझड़ की उस घमासान दोपहर में हवा जैसे अपनी छुट्टी पर चली गई थी। नीता ने सोचा, क्यों न शकुंतला के घर का बहाना बनाया जाए और

सीधे छंगे हलवाई की दुकान की तरफ़ रुख कर लिया जाए। पर जब वहां पहुंची तो दुकान में गुप्ता जी का नामोनिशान नहीं था। थोड़ी देर के बाद, कलुवा से तफ्तीश करने पर पता चला कि वह अब मंगल के मंगल गल्ले पर विराजमान होते है। ये सुनते ही नीता का खून खौलने लगा और वह जैसे गुस्से में उबलती हुई, सीधे चौराहे की तरफ चल दी। चौराहे पर पहुंची, तो पूरी कोशिश की कि गुप्ता का कहीं कुछ पता चले, पर जैसे वह आदमी किसी जादू से गायब हो गया था। थक हारकर, नीता अपनी सहेली शकुंतला के घर लौटी। शकुंतला ने फिर से एक दिलचस्प बात बताई कि चौराहे पर एक मिठाई की दुकान खुली थी, जो कुछ दिनों में ही बंद हो गई, और उसी स्थान पर एक टॉय शॉप का उद्घाटन हुआ। यह सुनते ही नीता का शक और भी पक्का हो गया। फिर क्या था, उसने शकुन्तला को पकड़ लिया और बोली, "चल, अब चलते हैं चौराहे की ओर, हो सकता है कुछ और खुलासा हो जाए!"

शकुंतला, जिसके माथे से सिंदूर मिट चुका था, अब बस एक चलती-फिरती लाश थी, जो सांसें तो ले रही थी, लेकिन जीती नहीं थी। गली के मोड़ पर एक मंदिर था। वहीं, पंडित रामनाथ खड़े थे, जिनकी आँखें हमेशा औरतों के जिस्म पर ही टिकी रहती थीं। नीता को देखते ही बोले, "बेटी, उस दुकान पर मत जाना। पाप बिकता है, वहाँ।" उनकी आवाज़ में वही बनावटी मिठास थी, जो एक वेश्या के होठों से निकली 'इश्क' की बातों में होती है ।

शकुंतला ने जवाब दिया, "पंडित जी, पाप तो वहाँ भी है जहाँ आप सुहागरातों के लिए मुहूर्त निकालते हैं। क्या वह पाप नहीं, जब एक

नाबालिग़ लड़की को एक बुड्ढे से ब्याह दिया जाता है ?" पंडित जी की आँखें ऐसे फट गईं जैसे किसी ने उनके चेहरे पर थूक दिया हो। वे अपनी दुकान के अंदर भाग गए, जहाँ उनकी पत्नी, जो उनसे बीस साल छोटी थी, एक बच्चे को दूध पिला रही थी। नीता और शकुंतला उस दुकान की तरफ बढ़ीं।

रास भण्डार के सामने भीड़ थी। नीता तो यहाँ आ चुकी थी। क्या ये दूकान उसके पति की है ? जैसे तमाम सवाल उसके ज़हन में आने लगे। वो भी अंदर घुस गई। वहाँ औरतें थीं, रबड़ और बैटरियों में अपने लिए संतोष ढूँढ रही थीं। एक कोने में एक लड़की किताब पढ़ रही थी - "कामसूत्र, एक आधुनिक व्याख्या ।" नीता ने सोचा, "बेचारी, किताब में ढूँढ रही है वो जो उसके बदन में है।" काउंटर पर वही आदमी था, चश्मा लगाए, दाढ़ी में सफ़ेद बाल। नीता की नजर जैसे ही उस पर पड़ी, उसके मन में अचानक एक सवाल कौंधा—क्या यही वह मिठाई की दुकान है, जिसका वह इतने समय से खोज कर रही थी ? उसकी आंखें दुकानदार के चेहरे पर टिक गईं, खासकर उसकी नाक पर। न जाने क्यों, उसे ऐसा लगा जैसे किसी अदृश्य सूत्र ने उसकी शंका को यकीन में बदल दिया हो। लगा जैसे यह दुकानदार असल में कोई बहरूपिया है, और वह बहरूपिया उसका पति ही है। उसकी सांसें तेज हो गईं, उसने हिम्मत बांधी और दुकान के भीतर एक कोने में जाकर जोर से पुकारा, “मिश्रीलाल!” दुकानदार, जिसका नाम कामदेव था, झट से पलटा। उसी पल नीता के मन ने उसे बता दिया—हां, यही है, यह बहरुपिया ही उसका पति है ।

नीता की साँसें जैसे कुछ पल को थम गईं। उसके सामने खड़ा आदमी, जो कामदेव के नाम से जाना जाता था, वही गुप्ता था — उसका पति। चेहरा वही था, पर वक्त और छल की धूल ने उसे ऐसा ढँक दिया था कि पहचानने में देर लगी। फिर भी, दिल तो पुराने जख्मों की पहचान कर ही लेता है।

"नीता," गुप्ता की आवाज़ धीमी थी, टूटी हुई, पर कोशिश करती कि कुछ जोड़ सके। "हम जानत हैं, तुमरे मन में का चल रहा है..."

नीता कुछ देर तक वैसे ही खड़ी रही, जैसे किसी बर्फीले तूफ़ान के बीच कोई पेड़ अकड़ा खड़ा रह जाए — हिलता नहीं, टूटता नहीं, बस खड़ा रह जाता है।

उनके बीच न कोई सवाल उठा, न कोई सफाई दी गई।

गुप्ता ने भी आगे कुछ नहीं कहा। दोनों के बीच वो मौन पसरा था जो कई सालों की दूरी, धोखे, अफ़सोस और अधूरी कहानियों से बना होता है।

ऐसा मौन जिसमें चीख़ें नहीं होतीं — सिर्फ वो पुरानी आवाजें होती हैं जो कभी ज़ुबान तक आई ही नहीं।

कुछ तो नीता की आँखों में तैर रहा था — न नफ़रत, न प्यार... कुछ और।

जैसे कोई बहुत पुराना सपना, जो अब लौट कर आया हो — टूटने के लिए नहीं, बस समझ लेने के लिए।

दुकान की दीवारें,  ग्राहकों की आवाजें, गल्ले की खनक — सब उस पल में गायब हो गए।

केवल दो इंसान थे, और उनके बीच एक अधूरी दुनिया।

शायद अब कुछ खत्म नहीं होना था।

शायद अब कुछ शुरू होना था।

या शायद... बस एक मौन समझौता लिखा जा रहा था — बिना काग़ज़, बिना क़लम।

केवल नज़रों से।

उस रात जब गुप्ता घर लौटा तो दोनों के बीच कुछ बात नहीं हुई। दोनों अपनी अपनी करवटों के साथ सो गए।

और फिर सालों बाद एक सुबह ऐसी आई जब आँगन में कोई चिल्लपों नहीं थीं। मिश्रीलाल ने आँगन में लगे टूटे-फूटे शीशे के सामने खड़े होकर अपनी बिखरी दाढ़ी को संवारा। नीता ने चाय बनाई। दोनों ने आँगन में बैठकर साथ चाय पी, जैसे किसी अमृत का प्याला हो। पंकज और खुशबू अपने माँ-बाप के इस अजीब व्यवहार को देखकर हैरान थे। "लगता है दोनों में कोई समझौता हो गया है," पंकज ने खुशबू की तरफ इशारा किया। दोनों छत से इस तमाशे का लुत्फ उठा रहे थे, जैसे किसी सर्कस को देख रहे हों। खुशबू बोली, "समझ नहीं आ रहा, नर ने मादा को अपने जाल में फँसाया है या मादा ने नर को।" दोनों की हँसी फूट पड़ी। गुप्ता और गुप्ताइन ने ऊपर देखा, पर तब तक वो दोनों छिप चुके थे। दरअसल, गुप्ता और गुप्ताइन के बीच कोई बातचीत नहीं हो रही थी। पर दोनों के बीच की वो झिझक, जो हमेशा एक दीवार की तरह खड़ी रहती थी, आज गायब थी।

न गुप्ता खुलकर कुछ पूछ सकता था, न गुप्ताइन खुलकर कुछ बता सकती थी। बस दोनों चुपचाप बैठे थे, जैसे दो अजनबी एक ही कमरे में बंद हों।

तभी गुप्ता ने बच्चों को आवाज़ लगायी— आँगन में बैठे सब जैसे एक-दूसरे को ऐसे देख रहे थे मानो अचानक कोई परत उतर गई हो और सबकी असलियत सामने आ गई हो। उसने सबकुछ अपने परिवार को साफ़ साफ़ बता दिया। उसने बताया कि कैसे एक विधवा उनकी दुकान पर आई थी। उसकी आँखों में वो भूख थी जो समाज ने उससे छीन ली थी। गुप्ता ने कहा, "मैं सिर्फ प्लास्टिक और रबर नहीं बेचता। मैं उन ख्वाहिशों को बेचता हूँ जो लोग अपने अंदर दफन कर देते हैं।"

नीता ने अपने पति को देखा। वह जानती थी कि उसका पति सिर्फ एक दुकानदार नहीं, बल्कि उन लोगों का मसीहा था जो अपनी ही देह से शर्मिंदा थे।

खुशबू, जिसकी आँखों में अभी भी बचपन की मासूमियत थी, बोली, "स्कूल में लड़कियाँ तो अपने ही जिस्म से शरमाय लिहें, और लड़के उनही का ऐसे ताकें जैसे कोई गोश्त का टुकड़ा हो।” उसकी आवाज़ में एक ऐसी समझ थी जो उसकी उम्र से कहीं ज्यादा पुरानी लग रही थी।

तभी पंकज बोल पड़ा ,"हमरे यार लोग पहले तो पोर्न देखके आंख भर लेते हैं, फिर लड़की देख के ऐसे घूरते हैं जैसे अभी जिंदा चबा जाएंगे!" उसकी आँखों में अब एक नई रोशनी थी, जैसे उसने कोई गहरा राज़ जान लिया हो। गुप्ता ने अपनी बात शुरू की। उसकी आवाज़ में एक गुरु का ठहराव था। "**शहर में कोठे खुले हैं जहाँ औरत बिकत है। जब तक हम**

**अपनी ही वासना से मुंह फेरते रहेंगे, तब तक ना ये धंधा बंद होगा, ना इन लड़कियन का दुख मिटेगा।"**

तभी नीता ने गुप्ता का हाथ थाम लिया। उसकी आँखों में अब आँसू नहीं थे, बल्कि एक नई उम्मीद चमक रही थी। "जैसे गंगा सब कुछ बहा ले जाती है, वैसे ही मेरा प्यार इस नई समझ को अपना लेगा।" खुशबू और पंकज ने अपने माँ-बाप को गले लगा लिया। उन्होंने समझ लिया था कि उनके पिता ने सिर्फ एक दुकान नहीं खोली थी, बल्कि एक ऐसी आग लगाई थी जो इलाहाबाद की गलियों से लेकर उसके दिलों तक फैलने वाली थी। उस रात, जब वे सब सोए, बाहर इलाहाबाद की गलियों में एक नई हवा बह रही थी। यह वही हवा थी जिसमें कभी मुग़लों के महलों की खुशबू थी, जिसमें कबीर के दोहों की गूँज थी, और जो अब गुप्ता के घर से निकलकर पूरे कसबे को एक नई आज़ादी का पैग़ाम दे रही थी।

"पापा आप टेंशन न लीजिए, आपका बेटवा अब आपके लिए वकालत करी। अइसन-अइसन दलील देई कि जज साहब खुद कहिहैं — 'हम तो आलोक जी के फैन हो गए!' "

आलोक की ई बात सुनते ही सबके मुंह से हँसी छूट गई।

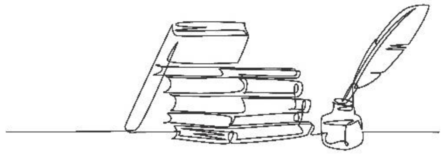

# इनाम

गुप्ता की आँखें खुल गई थीं, जैसे किसी अंधे को रोशनी मिल गई हो। अगले दिन उसने अपनी दुकान को एक अजीब मकसद से खोला, जो इलाहाबाद की गलियों में बम की तरह फटा। यह दुकान अब एक ऐसा क्लीनिक बन गई थी जहाँ कामुक ज्ञान बेचा जाता था, जैसे कोई हकीम जड़ी-बूटियाँ बेचता है। एक सुबह, एक डॉक्टर दुकान में घुसा। उसके चश्मे के पीछे की आँखों में किताबों का कब्रिस्तान था। वह शरीर की बनावट समझाने लगा, जैसे कोई शायर इश्क की बारीकियाँ बताता हो। फिर एक दिन, एक औरत आई। वह सहमति की बात करने लगी, उस तरह जैसे कोई माँ अपने बच्चे को मौत समझाती हो। उसकी आवाज़ में वह दर्द था जो शहर की औरतों-मर्दों के जिस्म में सदियों से पनप रहा था।

**गुप्ता की दुकान अब सिर्फ प्लास्टिक और रबर नहीं बेचती थी। वह अब लोगों की छुपी हुई ख्वाहिशों का सौदा करती थी**। यह दुकान अब एक ऐसा मंदिर बन गई थी जहाँ लोग अपने जिस्म की पूजा करने आते थे, और एक ऐसी मस्जिद जहाँ वे अपनी रूह की आज़ादी की दुआ मांगते थे।

लेकिन शहर में कुछ लोग अभी भी गुप्ता के खिलाफ थे, जैसे उनके दिलों में ज़हर भरा हो। खासकर लुक़मानी, जिसका यूनानी दवाखाना अब सूना पड़ा था। उसने जिस्म को बीमारी बताकर लाखों कमाए थे। पर अब उसके सारे दाँव उलटे पड़ रहे थे। ऊपर से लवड़ भास्कर की कहानी लोग ऐसे सुनाने लगे हैं जैसे मुहब्बत की कोई लोककथा हो—जहाँ हर नुक्कड़ पर कोई न कोई 'भास्करभक्त' बइठा मिल जाता है, जो बिना माँगे पूरी कथा सुना देता है।

लुक़मानी की आँखों में वही पुरानी चमक थी — जलन की, जो तब और तेज़ हो जाती है जब किसी और की रौशनी अपने अँधेरे को नंगा कर दे।

उसका यूनानी दवाख़ाना अब खाली पड़ा था — न वो भीड़, न वो नकाबपोशों की लाइन जो शर्म और दर्द के बीच झूलती थीं।

अब हर कोई रास भंडार की बातें करता था, जहाँ कोई दवा नहीं, बस बात होती थी। और लोग ठीक भी हो रहे थे।

"वो दुकान बंद होनी चाहिए,"

लुक़मानी की आवाज़ में ज़हर था।

उसने बबली को बुलाया। बबली चुपचाप बैठा रहा। उसकी चुप्पी में वो डर था, जो सिर्फ वो जानते हैं जिनका अतीत सीधा किसी और की जेब में रखा हो।

लुक़मानी आगे झुका —

"हुज़ूर, मिर्ज़ा! देखिएगा, आप वाला वह वीडियो हमारी तिज़ोरी में महफ़ूज़ है। अगर गुप्ता की दुकान यूं ही चलती रही... तो फिर अल्लाह गवाह है, आपकी सियासत को हम ऐसी रवानी बख़्शेंगे कि वो सीधे मोहल्ले के नाले में उतर जाएगी — और वो भी हुज़ूर, जूते उतारने की ज़हमत के बिना!"

बबली के माथे की रेखाएं गहरी हो गईं।

उसे मालूम था — लुक़मानी इस खेल पुराना का खिलाड़ी है।

पर अब हालात बदल गए थे। बबली कभी नहीं चाहता था कि प्रयाग राज वालों को पता चले कि वो अपनी नामर्दी का इलाज करवा रहा है। काहेकि बड़ी मुश्किल से अपनी राजनितिक पैठ बना पाया था।

बबली ऊपर से शेर था — भारी आवाज़, भारी जूते, और हर वक़्त गले में लटकता भगवा गमछा। नेताओं की चरण-वंदना करता, अफसरों के बच्चों की शादी में नाचता, और पंचों की बेटी के तिलक में पैसा गिरा के अपने को 'बड़ा आदमी' कहलवाता। उसकी असली पाठशाला उसके ससुराल में खुली — जहाँ उसे सिखाया गया कि पावर का असली रास्ता शराब के टीन के डब्बों से होकर जाता है। वो अब वही आदमी था जो रात को डकैती करवाता, और दिन में उन्हीं के केस लड़वाने के लिए वकील खड़ा करता। नेताओं के लिए वो वो 'मैनेजमेंट' था — जो हफ्ते भर में गाय बचाने वाली फोटो खिंचवाता, और रविवार को गाय का गोश्त खाता।

उसके लड़के — जिनके नामों में 'आर्य' और 'सेना' जैसे शब्द जुड़ गए थे — मुसलमान लड़कों को पीटते, और वीडियो बनाते।

वीडियो फिर किसी मंत्री के ट्विटर हैंडल पर जाते।

अगले दिन बबली की दुकान पर माला चढ़ती।

पर लुक़मानी का डर — वो कुछ और था।

लुक़मानी जानता था बबली की परतों के नीचे छुपा एक ऐसा सच, जो इस शहर में इज़्ज़त नहीं, आग लगा सकता था।

बबली समलैंगिक था।

उसने ये बात हमेशा दबाए रखी — जैसे कोई दीवार के पीछे रखी संदूक, जिस पर धूल भी न जमे।

पर लुक़मानी ने देख लिया था वो संदूक खुलते हुए।

कहने को इलाज करता था, पर बबली खुद उस 'इलाज' का सबसे पुराना मरीज़ था।

उसे मालूम था — एक दिन अगर लुक़मानी ने वो दरवाज़ा खोल दिया,

तो उसके सारे गमछे, सारे सलाम, सारे वीडियो —

उस एक सच के सामने कागज़ हो जाएंगे, जो पहली बारिश में गल जाते हैं।

इसलिए बबली उस दिन पहली बार हारा हुआ दिखा —

जब लुक़मानी ने सिर्फ उसकी तरफ देखा था, मुस्कुरा के।

बिना कुछ कहे भी सब कह देने वाला वो लुक।

मंदिर की दीवारें पुरानी थीं — पीली पड़ चुकी चुनाई, जिन पर समय की फफूँद चढ़ी थी।काली माता की मूर्ति के सामने अगरबत्तियाँ बुझ चुकी थीं, धुआँ अब भी तैर रहा था — जैसे देवता खुद ऊब चुके हों अपने भक्तों से।

बबली भैया, अपनी हवाई चप्पल को उतार कर एक ईंट पर रख, वहीं मंदिर के अंदर गद्दी जमाए थे। घुटनों के बल बैठे चार गुंडे, किसी सभा के सिपाही लग रहे थे।

पप्पू ने पीठ पर हथियार छुपा रखा था — हल्का सा कपड़ा डालकर,

दिपुवा कान में बोरोप्लस लगाए बैठा था — पिछले हफ्ते किसी ने चाँटा मारा था।

सीढ़ियों पर लड़ते कुत्ते, मंदिर की चुप्पी से भिड़ते लग रहे थे —

जैसे बबली के मन में भीतर ही भीतर कुछ भौंक रहा हो।

उसका गुस्सा भीतर पक रहा था, चेहरे पर चमक नहीं, धधक थी।

"देख भई," बबली ने दाँत दबा के कहा, "बहुत हो चुका अब। गुप्ता टाइप लोग अगर यूहीं खुलेआम बोलते रहे, तो हमरी दुकानदारी पे तो सीधा ताला लग जाई!"

पप्पू बोला, "भइया, देख लिहा... अगली बेर वो अकेले टकरा जाए न, त सीधा उठवा लेत हैं... समझे कि नहीं?"

बबली ने गर्दन हिलाई, फिर पल भर को चुप रहा।

उसने कोने में बैठे पुजारी की तरफ देखा —

वो बूढ़ा आदमी, जिसकी आँखें कटोरे जैसी थीं, मानो उनमें बस चढ़ावा गिरता हो।

"अरे पंडित जी, आप तो हमेशा बोले वाले हैं... आज का हुआ, मौनी बाबा बन गए हैं?" बबली ने खींच के पूछा।

पंडित धीरे से मुस्कुराया, जैसे श्मशान में दिया जलाने वाला मुस्कुराता है।

"का बोले भइया... ऊ ससुरा तो हमरे प्रयागराज की पवित्तर धरती को गंदा करत फिरत है। ऐसे असुर के तो बाँध के गंगाजी में डुबो देना चाहिए — तब जाके शुद्ध हो कुछ!"

मंदिर में एक सन्नाटा फैल गया —

और कुत्ते, लड़ते-लड़ते चुप हो गए।

जैसे शहर की आत्मा, एक बार फिर बबली के गुस्से से सहम गई हो।

"अरे ई कामदेव साला तो अब खुद को शहर का राजा समझे लगल है! वार्निंग दिहे रहे, पर दुकान त वैसे की वैसे ठाढ़ बा!" बबली ने थूकते हुए कहा। उसका थूक मंदिर के फर्श पर वैसे ही फैल गया जैसे उसका प्रभाव इलाहाबाद की गलियों में फैला था।

"अरे भइया, ऊ तो लुक़मानी का कौनों जानी दुश्मन लागत है बस!" छोटू ने कहा, जो गुंडों में सबसे कम उम्र का था और मंदिर में सबसे ज्यादा असहज लग रहा था।

बूढ़े पुजारी ने आँखें उठाकर देखा, फिर सर झुका लिया।

"भइया, कहत हैं कामदेव तो लुक़मानी का धंधा चबा-चूस के रख दिहिस! अब तो बिचारा बस झाड़-फूंक में रह गया है!" गज्जू ने कहा, जिसके दाँत पान से इतने लाल थे कि लगता था जैसे उसने किसी का खून पिया हो।

बबली ने मुट्ठी भींच ली। "हां उसकी वजह से अब ऊ लुक़मानी, जो कल तक गली के मोड़ बामुश्किल दस रुपये का तेल बेच पाता था, आज हमें आँख दिखा रहा है!"

"हाँ भैया !" पप्पू ने हँसते हुए कहा।

बबली की आँखों में आग जल उठी "अपनी औकात कब भूल गवा ससुरा? हमरे मोहल्ले में रह के हमको भुला गवा।"

"भैया, आप बस हुकुम दीजिए," पप्पू ने कहा, जिसके हाथ पर 'माँ' का टैटू ऐसे चमक रहा था जैसे वह अपनी माँ से माफी माँग रहा हो कि वह उसके सपनों का इंसान नहीं बन पाया।

बबली ने सोचा। उसकी आँखें मंदिर की छत पर रखी घंटी पर टिकी थीं। "होली आ रही है न?" उसके चेहरे पर एक शैतानी मुस्कान थी।"तो का भइया, होलिका दहन से पहिले एगो छोटका दहन कर दिये जाए?"

उस रात की हवा में कुछ जल रहा था — सिर्फ लकड़ी नहीं, कुछ और...

कुछ उम्मीदें, कुछ साहस, और शायद एक आदमी का आत्मसम्मान।

इलाहाबाद की गलियों में होलिका दहन के ढोल बज रहे थे,

लोग हँस रहे थे, गुलाल उछल रहा था —

पर मुट्ठीगंज के एक कोने में रास भंडार धू-धू कर जल रही थी।

जिस तरह से कोई देवी की मूर्ति को धोखे से नदी में डुबो दे —

गुप्ता की दुकान पर भी धर्म के नाम पर हमला हुआ था,

लेकिन हमला धर्म पर नहीं, मनुष्यता पर हुआ था।

गुंडे चले गए थे —

चेहरों पर नकाब नहीं था, लेकिन मन में घृणा की पपड़ी जमी थी।

किसी ने पीछे मुड़कर नहीं देखा —क्योंकि इलाहाबाद अब ऐसी जगह बनता जा रहा था

जहाँ अपराध करने के बाद पीछे देखने की ज़रूरत नहीं पड़ती।

गुप्ता जब पहुँचा,

तो उसका मुँह धुएँ से भरा था,

और आँखों में वो जलन थी जो सिर्फ राख नहीं, अपमान से आती है।

पास ही गोलू खड़ा था —

वो कुछ कह नहीं रहा था,जैसे आग नहीं, कोई भरोसा बुझाने की कोशिश कर रहा हो।

गुप्ता धीरे से बुदबुदाया,

“मैंने किसी का क्या बिगाड़ा था?”

गोलू बोला,

"गुप्ता जी, सच बोलना अपने आप में गुनाह नहीं है... लेकिन जब सामने सब मूढ़ बैठे हों, तब सच कहना बगावत कहलाता है।"

उधर टीवी पर रैंडम दुबे जैसे भौंकू एंकर चिल्ला रहे थे —

“प्रयागराज में धर्म की ऐतिहासिक जीत, गंदी विचारधारा फैलाने वाली दुकान जलकर भस्म!”

स्टूडियो में बैठे थे नकली धर्माचार्य,

जिनके पेट शुद्ध घी से नहीं, घृणा से भरते हैं।

वे तिलक लगा कर कह रहे थे —

“दिव्य न्याय हुआ है!”

उस रात की हवा में मातम घुला हुआ था। इलाहाबाद के बाकी मोहल्ले जहाँ ढोल-नगाड़ों और DJ पर "बलम पिचकारी..." के सुर में झूम रहे थे, वहीं गुप्ता का आँगन शोकसभा बन गया था — बिना मंत्र, बिना विधि, बिना अंतिम शब्दों के।

गुप्ता चौकी पर बैठा नहीं था — वो बस था, जैसे किसी ने शरीर को पकड़कर आत्मा से अलग कर दिया हो।

उसके सामने का दृश्य धुंधला था —

शायद धुएं की वजह से, शायद आँखों की नमी से,

या शायद इसलिए कि अब देखने लायक कुछ बचा ही नहीं था।

और फिर एक ज़ोरदार धमाका हुआ —

शायद कहीं और कोई पटाखा,

या शायद मोहल्ले में किसी का आख़िरी सब्र टूट गया हो।

गुप्ता का शरीर एक हल्की-सी हरकत के साथ ढह गया।

ऐसे जैसे कोई पुरानी बही-खाता अपने आप बंद हो जाए।

नीता दौड़ती हुई आई —

उसका चेहरा डर से सफ़ेद, आँखों में वो दहशत

जो तब आती है जब आप जान जाएँ

कि जिस इंसान को आप बरसों से जानती थीं,

उसका अब कोई भी क्षण आपके साथ आख़िरी हो सकता है।

वो बेतहाशा फोन कर रही थी —

गोलू को, डॉक्टर को, भगवान को —

जो भी नंबर उसके हाथ लगते गए।

गुप्ता की साँसें मंद थीं,

मानो शरीर कह रहा हो — अब बहुत हो गया।

और फिर, जैसे मंच पर कोई आखिरी परदा गिरता है,

गुप्ता की आँखें धीरे-धीरे बंद हो गईं —

एक ऐसे व्यक्ति की तरह,जो दुनिया से नहीं, अपनी उम्मीदों से हार गया हो। पर इस चुप्पी में भी एक सवाल बाकी रह गया था —

क्या यह अंत था?

या अब वो शुरू हो रहा था

जिसे एक पूरी उम्र सिर्फ दबाया गया?

फ़िलहाल, मोहल्ले की हवा चुप थी —

और चुप्पी से बड़ा शोर कोई नहीं होता।

बबली भैया रातों-रात इलाहाबाद के संस्कृति रक्षक घोषित हो गए। जैसे ही दुकान जली, वैसे ही मुहल्ले की दीवारों पर बबली की जयकारें उग आईं —

"बबली भैया ज़िंदाबाद!"

"जो हिंदू संस्कृति से टकराएगा, चूर-चूर हो जाएगा!"

टीवी चैनलों पर बबली की तस्वीर — तिरंगे के आगे खड़ा, सिर पर भगवा पट्टी बाँधे, और माइक पर गरजता हुआ — जैसे होली पर बबली नहीं, खुद 'संस्कृति' अवतरित हुई हो।

कार्यकर्ताओं ने अगले दिन प्रेस कॉन्फ्रेंस रखी —

पीछे भगवा पोस्टर, सामने बबली भैया, और हर सवाल का एक ही जवाब:

"हमने बस संस्कृति की रक्षा की है।"

अंदरखाने बात ये थी कि बबली को पार्टी के आलाकमान से फोन आ चुका था —

"बढ़िया किया बबली, बहुत बढ़िया। विधानसभा की सीट तैयार रखो।"

बबली की चाल अब बदली-बदली लग रही थी।

वो जिस गली में झुंड लेकर चलता, वहां अब लोग सिर झुकाकर सलाम ठोकते।

जिन लड़कों को वो कल तक "ओए लौंडा" कहता था, आज उन्हें "कार्यकर्ता" बोलता।

और गुप्ता?

गुप्ता कहीं नहीं था — न अखबारों में, न बाइट्स में,

क्योंकि जो जलता है, उसकी खबर नहीं बनती — जो जलाता है, वो नेता बनता है।

इलाहाबाद एक बार फिर शांत था।

पर ये शांति वही थी जो किसी दंगे के बाद कर्फ्यू में मिलती है —

थोपी हुई, खोखली, और बारूद जैसी गीली —जो अगले चुनाव तक सूखकर फिर जल उठेगी।

बबली भैया का करियर सेट था।

बाकी सबकी ज़िंदगियाँ, हमेशा की तरह, रीसेट हो चुकी थीं। और लुक़मानी का करियर ख़तम होते होते बच गया था शायद।

गुप्ता की आखें खुली तो उसने एक बार फिर खुद अस्पताल में पाया। बिस्तर के चारो तरफ उसका परिवार था और गोलू और राजकुमारी। गोलू के हाथ में अखबार था गुप्ता के आखें खोलते ही गोलू उसकी तरफ वो अखबार दिखाते हुए बोला। " इससे पहले तुम तीसरा अटैक लो हम ये बता देना चाहते थे कि तुम्हारे बेटे की वकालत की वजह से हमें अपनी दुकान का बीमा मिल चुका है। बस यूँ समझ लो इस सरकारी तंत्र ने हमारा नुकसान किया था हमने भी बदले में उससे अपने नुक्सान का दस गुना वसूल कर चुके है। अब तुम लोन चुकाओ चाहे लॉस एंगल्स निकल जाओ। बहुत पैसा दिलवा दिया है तुम्हारे इस बक्सी ने।"गुप्ता की धड़कने सामान्य होने लगी थी।

पंकज एक कोने में खड़ा था, पर इस बार उसके चेहरे पर शर्म नहीं, गर्व था।

नीता ने एक गिलास पानी बढ़ाया, और गुप्ता ने बिना काँपे पी लिया।

डॉक्टर साहब ने एक बार फिर स्टेथोस्कोप लगाया और बोले,

"अब इनका इलाज पैसे से नहीं, प्यार से होगा।"

डॉक्टर के इतना बोलते ही गोलू मिश्रा बीच में टोकते हुए बोला ," अरे डॉक्टर साहेब , बनिया आदमी को प्रॉफिट की खबर सुना दो तो कबर से उठ के खड़ा हुई जाए।" गोलू के इतना कहते ही पूरा कमरा हंसी से गूँज पड़ा। कमरा फिर हँसी से भर गया।

और गुप्ता की आँखों में पहली बार भविष्य दिखाई दिया —

ना केवल बीते हुए नुकसान का हिसाब,

बल्कि आने वाले दिनों का मुनाफ़ा।

जैसे इलाहाबाद ने एक बनिए को फिर से जिंदा कर दिया हो।

फागुन बीत गया। इलाहाबाद की गलियों में फिर से आम की बौर महक रही थी। लेकिन अब गुप्ता की दुकान की जगह एक नया बोर्ड टंगा था —

"हम अब ऑनलाइन हैं। www.rasbhandar.com"

पुराने गल्ले पर अब लैपटॉप रखा था। चारो तरफ रैपरबंद पैकेजिंग रखी थी, और हरऑर्डर निकलते ही नीता बारकोड स्कैन करके मुस्कराती थी — जैसे समय ने उसकी घुटती ज़िंदगी को खुद चुनने का मौका दे दिया हो।

गोलू मिश्रा, जो घाट किनारे बैठकर कभी शादी और एसिडिटी का रिश्ता समझाता था, अब वेबसाइट का टेक लीड बना बैठा था। राजकुमारी अब हेल्पलाइन संभालती थी — हकलाते, झिझकते ग्राहकों को समझाते हुए, "हाँ भैया, सब समझ में आएगा। पहले खुद को समझो।"

गुप्ता?

अब वो सिर्फ "गुप्ता जी" नहीं थे।

वो एक ऐसे आंदोलन का चेहरा थे जो चुप्पियों में आवाज़ भर रहा था।

उसने जीवन के तीसरे हिस्से में एक बात समझ ली थी —

"शरीर को समझना, और समाज से बिना डरे जीना — यही असली कारोबार है। बाकी सब तो बस लेन-देन है।"

फिर एक दिन, जब नीता नींबू पानी बना रही थी, गुप्ता ने झिझकते हुए कहा:

“अब जो करना था, वो कर लिया। मैं सोच रहा हूँ, अपनी पुश्तैनी दुकान कमल-कांत और विमल-कांत को सौंप दूँ।”

नीता ने बिना कुछ कहे सिर्फ उसकी आँखों में देखा — और उसे वही पुराना सुकून मिला जो पहले पहल उसे ब्याह के वक्त मिला था।

कमल और विमल जब दुकान की चाबी लेने आए तो गुप्ता ने बस एक बात कही —

“देखो भाइयों, इस दुकान से हमने मिठास बेची है, पर झूठ नहीं। इसे जिंदा रखना, मगर ईमान के साथ।”

दोनों भाइयों ने सिर झुकाकर हामी भरी।

कई महीनों बाद जब एक पत्रकार ने गुप्ता से पूछा,

"क्या आप अपने अतीत से शर्मिंदा हैं?"

तो गुप्ता ने हँसते हुए जवाब दिया —

"हम तो व्यापारी हैं बाबूजी, शर्म से नहीं, सीख से जीते हैं। और अब जो हम बेच रहे हैं — वो शर्म नहीं, समझदारी है।"

इसी के साथ ये किताब भी ख़त्म होती है।

शायद अगली बार जब आप इलाहाबाद जाएँ, तो किसी गलती से भी न पूछिएगा — "गुप्ता जी की वो नई वाली दुकान कहाँ है?"

क्योंकि वो अब सिर्फ दुकान नहीं रही —

वो एक सोच है, एक आंदोलन है,

एक वेबसाइट है —

www.rasbhandar.com

और हाँ, मुट्ठीगंज में अब भी एक मिठाई की दुकान है, छंगे हलवाई एंड संस सीन्स 1856 .. जहाँ कमल-कांत और विमल-कांत अब वही हनुमान जी प्रसाद बेच रहे है —

मगर अब उनके साथ बैठे गुप्ता जी नहीं मिलेंगे।

वो अब स्क्रीन के उस पार रहते हैं —

जहाँ शर्म नहीं, समझ होती है।

बबली अब संसद में था, पर rasbhandar.com को बंद कराने की उसकी कोशिशें अब कोर्ट के नोटिस से ज़्यादा कुछ न थीं।

**(समाप्त)**